कुमार-सम्भव
पंचम सर्ग : तपो फलोदयो

पिनाकी द्वारा करने से मनोभव* को दग्ध,
देख अपने समक्ष विचलित सती का मनोरथ भग्न।
और अपना रूप कोसने लगी पार्वती हृदय से क्योंकि
सौभाग्यफल सौंदर्य को प्रिय से मिलना चाहिए ही।१।

मनोभव* : काम

रूप अवन्ध्यता हेतु समाधि अवलम्बन ले
पार्वती ने तप की इच्छा की आत्मा में।
अन्यथा कैसे वह तत्प्रकार का स्नेह व हर-सदृश
मृत्युंजय पति दोनों को प्राप्त सकती थी कर?२।

गिरीश के प्रति स्व-सुता की आसक्ति-मन
व तप द्वारा उद्यम करने को सुनकर।
मेना ने उसको वक्ष से लगाकर
निवारण हेतु कहा मुनिव्रत महद।३।

हे वत्सा, गृहों में देवता बसते हैं जैसा मन इच्छा करता है
तेरे तप व इस मृदु देह में कितना अधिक विरोधाभास है ?
पेलव* शिरीष-पुष्प भ्रमर के पद-भार सक्षम
परन्तु दोबारा पतङ्गि* का न सहन।४।

पेलव* : कोमल; पतङ्गि* : पक्षी

यद्यपि मेना का ऐसे आग्रह था, सुता की इच्छा थी ध्रुव
अतः उसके उद्यम को नियंत्रण करने में न हुई सफल।
कौन ईश के प्रति मन में दृढ़ - निश्चय व
नीचे पतित पय* को कर सकता है वापस ?५।

पय* : जल

कदाचित निज-मनोरथ हेतु इस मनस्विनी पार्वती ने
पिता को प्रार्थना की निज विश्वस्त सखी के मुख से।
कि जब तक उसे फल मिल जाता नहीं
तप-समाधि हेतु अरण्य-वास की दत्त हो अनुमति।६।

तत्पश्चात पूजनीय गुरु* द्वारा तप करने की
अनुरूप ग्राह्य अनुमति से प्रसन्न होकर गौरी।
चली गई शिखण्ड* परिपूरित एक शिखर पर,
जो बाद में जग में उसके नाम से है प्रख्यात।७।

गुरु* : तात; शिखण्ड* : मयूर

उसने अनिवार्य निश्चय से स्तन-मध्य लेप-चन्दन
हटाने वाले अपने मुक्ताहार का दिया त्याग कर।
और एक बाल अरुण पिंगल-वर्णी वृक्ष-छाल वस्त्र पहन
उन्नत पयोधरों द्वारा निषेध किया, जिसका देह से तंगबंध।८।

पूर्वेव उसका मुख सौम्य - गुँथे केशों से प्रतीत था मधुर
अब जटाओं में भी वैसे ही दिखता है सुंदर।
पंकज ललित न दर्शित मात्र षट्पद* पंक्ति से ही
अपितु प्रकाशमान होता है शैवाल संगति में भी।९।

षट्पद* : भ्रमर

व्रत हेतु पहने त्रिगुणी - मौञ्जी* के तन्तु,
भार से उसके रोम प्रतिक्षण खड़ा रखते थे।
उसका मेखला-स्थान रंजित हो गया था
प्रथम बार उस अवसर पर बाँधने से।१०।

मौञ्जी* : मूंज

अब उसके कर अधरों पर लाली लगाने से रुक गए हैं,
स्तनों में सुगंधित लेप नहीं लगाते, कंदुक-क्रीड़ा से हट गए हैं।
कुशांकुर* चुगने से उसकी उँगलियाँ हो गई हैं अति-क्षत,
बस मात्र रुद्राक्ष माला ही है कर में स्थित।११।

कुशांकुर* : पर्ण

वह जो कभी मूल्यवान शय्या पर पीड़ित हो जाती थी,
करवट में अपने च्युत केश-पुष्प चुभने से भी।
बैठती और सोती है अब भूमि पर,

अपनी बाहु-लता को तकिया बनाकर।१२।

उस व्रती ने अर्पित कर दी दो वस्तु
निक्षेप* में पुनः ग्रहण करने हेतु।
एक तो विलास चेष्टा नाजुक लताओं में
और दूजी विलोल* दृष्टि हिरणियों में।१३।

व्रती* : नियमबद्ध; निक्षेप* :धरोहर; विलोल* : लहरती

अपने कर्तव्यों में अतन्द्रित* प्रसव-संवर्धन हेतु वह
स्वयं ही स्तन-नुमा घटकों से तरुओं को देती जल।
उसके मातृ-सम वात्सल्य को उसका प्रथम-जन्मा
पुत्र गुह भी नहीं पाएगा हटा।१४।

अतन्द्रित* : सावधान

और उसके द्वारा अंजलि से अरण्य-बीज देने
व लाड़-दुलार से मृग उसमें इतनी श्रद्धा करने लगे।
कि कुतूहल में सखियों समक्ष अपने अम्बकों की
लम्बाई उन हरिणों के नेत्रों से मापने लगी।१५।

अभिषेक करती, यज्ञाग्नि आहूति देती, स्तुति-पाठ करती,
वह वपु के ऊर्ध्व भाग में वल्कल* धारण करती।
उस देवी को देखने हेतु वहाँ आते ऋषि,
धर्म-वृद्धि विचारों में समीक्षा न होती आयु की।१६।

वल्कल* : वृक्ष-छाल

वहाँ पूर्व-मत्सर* त्याग दिया गो, व्याघ्र आदि विरोधी जीवों ने
अतिथियों को संतुष्ट किया जाता वृक्षों के अभीष्ट भोजन से।
संचित यज्ञ-अग्नि जलाई जाती मध्य पर्णशाला नव,
तपोवन पावन हो गया तरह से इस।१७।

मत्सर* : वैर

जब लगा तप-समाधि से इस प्रकार की
अभीष्ट फल प्राप्त होने वाला है नहीं।
तब उसने अपनी मृदु, सुकुमारी वपु* की उपेक्षा
करते हुए महान तप प्रारम्भ किया और भी।१८।

वपु* : देह

वह जो कंदु - क्रीड़ा से क्लम* थी जाती
अब तपस्विनियों सम व्यवहार थी करने लगी।
निश्चय ही उसकी काया सुवर्ण-पद्मों से निर्मित थी
प्रकृति एवं सार* में वह बहुत तनु थी।१९।

क्लम* : थक; सार* :तत्व

ग्रीष्म में शुचि-स्मिता* व सुमध्यमा* चार ज्वलंत हवि*-मध्य
बैठकर वह पार्वती, प्रतिघातिनि* प्रभा को विजित करती।
वह अनन्य - दृष्टि सवितुर* को अपलक देखती,
व दृष्टि अन्य किसी वस्तु पर जाती नहीं।२०।

शुचि-स्मिता* : मधु-मुस्कान; सुमध्यमा* : सुमृदु-कटि;
हवि* : अग्नि; प्रतिघातिनि* : नेत्र चुँधियाती; सवितुर* :सूर्य

तब सविता किरणों से भी अति-तप्त उसके
मुख ने दिवस-कमल की श्रियम* ली ले।
परन्तु शनै-२ उसकी नेत्र-दीर्घा* में निज-
पहचान बना ली मात्र श्याम-वर्ण ही ने।२१।

श्रियम* : सुंदरता; दीर्घा* : कोने

मात्र अम्बु उपस्थित था अप्रार्थित, उडुपति* की
अमृतमयी रश्मियाँ ही, उसका उपवास खोलते थी।
अत्यधिक क्षुधा में वृक्षों के
अतिरिक्त साधन थे फल रसीले ही।२२।

(उडुपति*: नक्षत्र-स्वामी, चन्द्र)

वह विभिन्न वह्नियों से होती अत्यन्त दग्ध,
जो नभचर ईंधन द्वारा है संचारित।
ग्रीष्म पश्चात नवजल से सिक्त हुई जो भूमि पर
पड़कर ऊर्ध्व उठता है वाष्प बनकर।२३।

प्रथम जल-बिंदु* एक क्षण तक उसकी पलकों पर ठहरते,

फिर अधरों से टकराते, पयधर* उभार पर गिरकर चूर्ण हो जाते।
और फिर उसके कटि-त्वचा के तीन वलयों से स्खलित होते,
जो चिरकाल पश्चात् ही नाभि-प्रदेश में पहुँचते।२४।

जल-बिंदु*: बौछार; पयधर* : स्तन

रात्रियाँ ही उसके महातप की साक्षी हैं देखकर,
उस शिला-शय्या सुप्ता व अनिकेतन* निवासिनी को।
और वृष्टि में जल-बौछारों मध्य,
तड़ित-प्रकाश में चमकती देखकर उसको।२५।

अनिकेतन* : बाहर खुले में- बिना घर के

हिमयुक्त अनिल वाली पौष-रात्रियों में
वह अडिग खड़ी रहती जल में।
परस्पर क्रन्दन करते चक्रवाक-मिथुन पर,
करुणावती है, जो उसके समक्ष गए बिछुड़े हैं।२६।

रात्रि में वह कमलों का स्थान ले लेती,
जब तुषार-वृष्टि से हो गए हैं पद्म - क्षित।
उसके मुख से कमल सी सुवास निकसित
और पत्रों सम उसके अधर होते कम्पित।२७।

परम काष्ठ सम घोर तप में वृति करती
वह द्रुमों से स्वयं - विशीर्ण* पर्णों से।
तथा उस प्रियंवदा ने वह भी त्याग दिया है
अतएव पुराविद* कहते उसे अपर्णा है।२८।

विशीर्ण* : च्युत; पुराविद* : पुराण आदि इतिहासकार

मृणालिका पल्लवों सी कोमल वह अपनी देह को
दिन-रात इस प्रकार कष्ट दे रही है व्रत-तप से।
और उसने घोर तप कर रहे दृढ़ शरीर वाले
तपस्वियों को भी छोड़ दिया है पीछे।२९।

तत्पश्चात कृष्ण मृग-छाल धारे, हस्त-धारण एक दण्ड-पलाश
प्रगल्भ-वाणी और ब्रह्ममयी तेजस्वी, किञ्चित जटावान।
प्रथम आश्रम अर्थात ब्रह्मचर्य में शरीर-बद्ध
एक सन्यासी ने प्रवेश किया तपोवन।३०।

पूर्ववत पार्वती ने चलकर अति-सम्मान सहित
उस ब्रह्मचारी के आथितेय हेतु की अर्चना।
समता होते हुए भी स्थिर-चित्त विशिष्ट
व्यक्तियों में होती है अति-गौरव चेष्टा।३१।

उस ब्रह्मचारी ने विधि-अनुष्ठान से पूजा
स्वीकृत करके एक क्षण विश्राम किया।
और उमा को सरलता भाव से चक्षुओं में देखकर,
शिष्टता न भूलकर यह कहना प्रारम्भ किया।३२।

क्या होम-यज्ञ हेतु समिधा एवं कुश सुलभ हैं
और क्या स्नान-विधि हेतु जल भी उपलब्ध है ?
क्या तुम तप स्व - शक्ति अनुसार करती हो ?
यथा यह देह ही धर्म-कर्त्तव्यों में साधन परम है।३३।

क्या तुम्हारे कर द्वारा सिंचित इन लताओं के
पल्लव उचित रूप से वृद्धि कर रहे हैं ?
जो तुम्हारे अधर से तुलना करते हैं, लाल तो हैं पर
चिरकाल से अलक्तक* जैसे रंग से हैं विरक्त।३४।

अलक्तक* : लाख

क्या तुम्हारा मन कर की दर्भ*
प्रेम से लेते हरिणों से तो है प्रसन्न ?
हे उत्पलाक्षी*, उनके विलोचन* चंचल
प्रतीत होते हैं तुम्हारी अक्षियों सम।३५।

दर्भ* : पर्ण; उत्पलाक्षी* : कमलनयिनी; विलोचन* : नयन

हे उमा, यह कथन असत्य नहीं है कि
व्याभिचार-पाप में नहीं ले जाता रूप कदापि।
और हे उदार-शीला, तेरा दर्शन प्रेरणा-योग्य
बन गया है तपस्वियों हेतु भी।३६।

यह महीधर हिमवान पर्वत अपने परिवार सहित
गंगा-सलिल द्वारा भी इतना पवित्र नहीं हुआ है।

न प्रमुदित दिव*-च्युत सप्तर्षियों द्वारा विकीर्ण*
पुष्पों से, जितना तेरे पावन चरणों द्वारा वह।३७।

दिव* : आकाश; विकीर्ण* : बिखेरें

ओ भाविनी*, तेरे कृत्य से त्रिवर्गों * में सार
धर्म ही मुझे विशेष प्रतीत होता है आज।
क्योंकि तुमने मात्र इस एक को ही मन से किया ग्रहण
और अर्थ एवं काम के विषयों को किया है निर्गत।३८।

भाविनी* : पवित्र उद्देश्यों वाली ; त्रिवर्ग* : काम, अर्थ, धर्म

तेरा मुझे अपरिचित मानना नहीं है उचित
अब तुमने दिया है जिसको सत्कार विशेष।
क्योंकि मनीषियों में मित्रता, ओ सन्नतगात्री*,
हो जाती उनके मध्य सप्त-पद* वाणी से ही।३९।

सन्नतगात्री* : नत-वपु; पद* : शब्द

अतः ओ तपोधनी, बहुक्षमा ! द्विजों में सहज
जिज्ञासा भाव से तुमसे कुछ पूछने को हूँ इच्छुक।
यदि यह रहस्य नहीं हो, तो तुम कृपया देना उत्तर।४०।

तुम्हारी प्रथम हिरण्यगर्भ कुल में उत्पत्ति है,
त्रिलोक-सौंदर्य तुम्हारी वपु में ही उदित* है।
ऐश्वर्य-सुख का तुम्हें न अन्वेषण है, तुम्हारे पास नवयौवन है
अतः बताओ, क्या अन्य आशीर्वाद चाहिए तपोफल से ?४१।

उदित* ; अभिव्यक्त

जब दुःसह्य बुराई द्वारा प्रवृत्त की गई हो,
ऐसा कृत्य मनस्वियों द्वारा ही साधित है।
परन्तु ओ कृशोदरी, चित्त द्वारा मार्ग-प्रशस्त
विचार से तुम्हारे जैसा न देखा सकता है।४२।

ओ सुभ्रू*, तेरी आकृति शोक-सहन असमर्थ,
जब पिता-गृह में अवमान* कहाँ आगमन ?
अपरिचितों द्वारा भी तेरा अनादर न सम्भव,
क्योंकि क्या कोई सर्प-मणि से आलोक सकता हर?४३।

(सुभ्रू* : सुंदर-भों वाली; अवमान* : अपमान

यह क्यूँ तुमने यौवन में आभूषण त्याग वृद्धाश्रम -
शोभित वृक्ष-छाल वल्कल* कर रखे हैं धारण ?
विभावरी* प्रारम्भ में जब चन्द्र-तारें स्फुटित हों,
कहो, क्या अरुणोदय कल्पना है सम्भव ?४४।

वल्कल* : वस्त्र; विभावरी* :रात्रि

यदि तुम स्वर्ग की प्रार्थना कर रही हो तो तेरा
श्रम वृथा है, क्योंकि देव-भूमि हैपितु-प्रदेश तेरा।
यदि एक सुयोग्य वर चाहती हो तो समाधि दो त्याग,
क्योंकि रत्न अन्वेषण होता है, न कि खोजता वह स्वयं।४५।

तुम्हारी उष्मित निश्वास* से नहीं है निवेदित
और तथापि मेरे मन में संशय ही है उत्पन्न।
मैं नहीं देखता तेरे द्वारा एक पति ही है अन्वेषण
कैसे सम्भव जब प्रार्थना करें तथा वह हो दुर्लभ।४६।

निश्वास* : आह

अहो, तुम्हारे द्वारा इच्छित युवा निश्चित ही है कठोर-हृदय
क्योंकि अभी तक स्थिर है देखकर उलझी जटाओं को वह।
जो कमलाग्र पिङ्गल* सम तेरे चौड़े कपोलों पर रही झूल,
जिससे कर्ण-उत्पल चिर समय से हैं शून्य-गत।४७।

पिङ्गल* : पीली भूरी शाली-पत्र नोक

इस मुनिव्रत से तुम इतना कृश,
आभूषण-स्थल दिवाकर द्वारा दग्ध।
शशांक रेखा सी बनी जा रही हो, इसे किस
सहृदय पुरुष का पीड़ित न होगा देखकर चित्त ?४८।

मैं विचारता तेरा वल्लभ* निश्चित ही अपने को चतुर
समझता हुआ तुच्छ सौंदर्य-मद* से छला गया है।
जो चिरकाल से अपना मुख तुम्हारी आत्मीय-चक्षु
और वक्र-भोहों की ओर लक्षित नहीं करता है।४९।

वल्लभ* : प्रिय; मद* : गर्व

और कितना दीर्घ अपने को दोगी कष्ट,
ओ गौरी, मैंने भी पूर्वाश्रमों में संचित किया है तप।
क्या तुम उस इच्छित वर हेतु उसका अर्ध-भाग ग्रहण-
आकांक्षा करोगी, मैं ज्ञातुम उस वर को सम्यक ?५०।

द्विज द्वारा उसके मनोगत-भाव प्रवेश कर ऐसे सम्बोधन से भी
लज्जावश न कह सकती थी मनोभाव वह पार्वती अपने।
अतः उसके बाद उसने देखा केवल अपनी पार्श्व-
वर्तिनी* सखी को अश्रुन-रहित अक्षियों से।५१।

पार्श्व-वर्तिनी* : अनुचर

उसकी सखी ने यूँ कहा ब्रह्मचारी को -
ओ साधु, यदि यही तुम्हारा कुतूहल है तो सुनो।
कि जैसे अम्भोज* द्वारा सूर्य-ऊष्मा निवारण करने सम इस
पार्वती ने स्व-काया को किसके हेतु तप-साधना में है कृत।५२।

अम्भोज* : पद्म

यह मानिनी चतुर्दिक*-स्वामी अतिश्रय* इंद्र एवं
अन्यों से घृणा कर इच्छा करती एक पति की उस।
पाणि* में पिनाक* वाले हर की करती कामना है जो
अविजित रूप द्वारा, यथा मदन-निग्रह से है स्पष्ट।५३।

चतुर्दिक* : चहुँ-दिशा; अतिश्रय* :वैभवशाली; पाणि* :कर; पिनाक* : त्रिशूल

पुष्प-धन्वा* का शर जिसका मुख पुरारि हर तक
पहुँच में था असफल, असह्य हुंकार सहित आ गया वापस।
यद्यपि भूत* नष्ट होने के बावजूद उसके एक क्रूर-बाण ने
इस उमा का हृदय कर दिया है घायल।५४।

पुष्प-धन्वा* : कामदेव; भूत* :शरीर

दग्ध प्रेम से उसके ललाट पर पतित
चंदन-रज से श्वेत अलका* सहित।
इस बाला को पितृ-गृह में हिम-शिला
तल में भी कभी सुख न मिला।५५।

अलका* : लट

अनेक बार भरे-कण्ठ गाने से सुस्पष्ट नहीं होते हुए भी
अपनी किन्नर राज-कन्या सखियों संग वन में वह पार्वती।
पिनाकी के पराक्रम-पद रोदन-संगीत में है गाती।५६।

रात्रि में जब तीन भाग शेष हैं, वह कदाचित ही एक क्षण हेतु नेत्र मूँदती है,
सहसा ही व्यथित होकर क्रंदन से शुरू हो जाती है, नीलकण्ठ ओ।
तुम कहाँ चले गए हो, और एक कल्पित शिला की ओर लक्षित हो
उसे असत्य कण्ठ मानकर, बाहु-पाश में जकड़ लेती है।५७।

और वह मूर्ख लड़की एकांत में स्व-हस्त द्वारा चित्रित
चन्द्रशेखर की भर्त्सना करती शब्दों में ऐसे।
तुम्हें मनीषी व्यापक जानते हैं फिर तुम कैसे
अपनी प्रीति में इस दासी के भाव न हो जानते ?५८।

और यद्यपि सोद्देश्य खोजती जब अंत में वह
जगत-पति प्राप्तुम कोई अन्य उपाय न पा सकी।
तब वह पिता की आज्ञा से हमारे संग
इस तपोवन में तप करने को आ गई।५९।

इस सखी द्वारा स्वयं-रोपित वृक्षों में पैदा फलों को
उसने देखा है, और वे साक्षी हैं उसके तप के।
और इसके मनोरथ ने शशिमौली* के विषय में
अभिमुख होते हुए भी नहीं देखा कोई अंकुर है।६०।

शशिमौली* : चंद्रशेखर

मुझे ज्ञात नहीं, वह प्रार्थना से भी दुर्लभ कब
हमारी इस सखी पर अनुग्रह करेगा, जो तप से है कृश।
तथा जिसकी देखभाल की जाती है हम सखियों द्वारा अश्रुओं सहित
जैसे वृष* अवग्रह*-संतप्त सीता* को पावस दे करता अनुग्रहित।६१।

वृष* : इंद्र; अवग्रह : अवर्षा; सीता : भूमि

उसके हृदय-रहस्यों को जानती उस सखी ने अतएव

निवेदन किया पार्वती के सद्भाव को इंगित हेतु करने।
नैष्ठिक सुंदर ब्रह्मचारी ने हर्ष लक्षणों को हुए छिपाते
उमा से पूछा, क्या ऐसा है या एक परिहास है ?६२।

हिमाद्र-तनुजा ने स्फटिक मणि-माला रख स्व-हस्त समक्ष
स्व-उँगलियों को एक बंद-कली आकृति सम बना लिया तब।
चिर व्यवस्थापित वाणी से किसी तरह महद -
कष्ट से मिताक्षरों में किया यूँ उवाच।६३।

वेद-वेत्ता पूज्य सुनो, तुमने जो सुना, है सत्य
यह दीन उच्च पद प्राप्ति की उत्सुक है तब।
यह तप उसी की ग्रहणता हेतु है साधन,
मनोरथ से कुछ भी नहीं है असम्भव।६४।

तदुपरांत वर्णी* ने कहा - महेश्वर सर्व-विदित है
और तथापि उसकी कामना हो करती।
ज्ञात हुए कि वह अमांगलिक वस्तुओं से प्रेम करता है,
तेरी इच्छा-निवृत्ति पूर्ण करने में, मैं न हूँ उत्साही।६५।

वर्णी* : ब्रह्मचारी

अरे, तुमने एक तुच्छ वस्तु में निज मन लगा है रखा
कैसे यह तेरा कर जिसमें कौतुक* बाँधा है जाना?
कैसे सर्पों के वलय वाले शम्भु के हस्त के
प्रथम परिचय* को सह है सकता?६६।

कौतुक* : विवाह-सूत्र; परिचय* : जकड़न

क्या तुम स्वयमेव करती हो पूर्णतया विचार
कि क्या ये दो तथ्य परस्पर योग हैं सक्षम?
कहाँ वधू-दुकूल* पर कल-हंस चित्रित लक्षण
और कहाँ शोणित* बिंदु गज-त्वचा से उद्धत ?६७।

दुकूल* : वस्त्र; शोणित* :रक्त

कौन एक शत्रु भी चतुष्क* पर बिछे अनेक
पुष्पों के कालीन पर दिव्य भवन के आँगन में;
तुम्हारे अलक्तक-रंजित चरणों की देखकर गति,
भू-पतित बिखरे केशों में मृत को देखना चाहेगा ही?६८।

चतुष्क* : चौराहा

कहो, क्या यह नहीं है अति-हास्यास्पद ?
कि त्रिनेत्र शिव के वक्ष पर सुलभ भस्म अतः;
तेरे वक्ष को भी चिता-भस्म रज कर देगी जो द्विस्तन
हरिचंदन लेप लगाने के लिए है उपयुक्त स्थल।६९।

और यह अन्य महत् विडंबना होगी
जिसको देखकर मुस्कराऐंगे महाजन।
राजसी गज की सवारी करने योग्य तुम
विवाह पश्चात चलोगी वृद्ध वृषभ संग।७०।

पिनाकी शिव की समागम-प्रार्थना से दो वस्तु
शोचनीय हो गई हैं एक तो अति-पूर्व से ही;
चन्द्र की सोलह कलाऐं और दूजे तुम,
जो कौमुदी* हो लोक के नेत्रों की।७१।

कौमुदी* : चाँदनी

वपु विरूप-नेत्रों से विद्रूप, उसका है अज्ञात कुल-जन्म,
ऐश्वर्य दिगम्बर-निवेदित, हे नयनिनी बाल-हरिणी सम।
क्या वरों में ढूँढनीय ऐसा भी है कुछ,
यदि एक को भी लें तो क्या त्रिलोचन में है स्थित ?७२।

तुम अपने मन को इस प्रतिकूल इच्छा से निवृत कर लो,
कितना अंतर है एक उस जैसा और एक तुम पुण्य-लक्षणा।
साधु-जनों द्वारा श्मशान की शूली से
वैदिक बलि-स्तम्भ की नहीं जाती है अपेक्षा।७३।

इसके बाद प्रतिकूल वाद करते थिरकते
अधरों से उसका कोप देखा जा सकता है।
उसने तिरछी नजरों से भ्रूलता* पर
अति-क्रोध से दृष्टि डाली द्विज पर। ७४।

भ्रूलता* : लता सम भों

और फिर उसने कहा - तुम निश्चय ही हो अनजान

हर के परमार्थ से, तभी तो मुझसे ऐसी बातें रहे हो कर।
मंद-बुद्धि द्वेष से महात्माओं के ढूँढा करते हैं चरित्र-दोष,
जो लौकिक प्राणियों में असामान्य, उनका चिंतन है दुष्कर।७५।

अनर्थ के प्रतिकार हेतु जो ऐश्वर्य-कामना अथवा मंगल
निषेध करता, जगत-शरण एवं है निराभिलाषी।
क्या उनके लिए आत्मा को दूषित करने वाली
तुच्छ आशा-तृष्णा वृत्तियाँ होंगी ?७६।

स्वयं अकिंचन, वह सम्पदाओं का कारण,
श्मशान में रहते भी वह त्रिलोकीनाथ है।
भीम* रूप होते हुए भी कल्याणकारी शिव
कोई भी न ज्ञात कि वास्तव में पिनाकी क्या है ?७७।

भीम* : भयंकर

उस विश्वमूर्ति* वपु की अवधारणा न सक्षम
आभूषणों से उद्भाषित है या कण्ठ सर्पों से सजा।
और चाहे गज-चर्म ओढ़े या महीन दुकूल करे धारण,
चाहे कपाल-पात्र लिए या शिखर इंदु स्थित किया।७८।

विश्वमूर्ति* : अष्टमूर्ति

उसकी देह के संसर्ग की कल्पना से ही
निश्चय ही चिता-भस्म भी हो जाती है पवित्र।
और ताण्डव नृत्य अभिनय क्रिया में च्युत
राख को देव लगाया करते हैं मस्तक।७९।

पूर्व दिशा के मत्त दिग्गज प्रभिन्न मद्रस्रावी
ऐरावत-स्वामी इंद्र चरणों को चूमता है मस्तक से।
उस निर्धन शिव के, जो वृषभ आरूढ़ होकर चलता है व
जिसके पाद मन्दर वृक्ष पुष्प-रज* कणों से रक्त हैं।८०।

पुष्प-रज* : पराग

ओ च्युत आत्मा, यद्यपि ईश के दोष बताने की ही इच्छा
करते हो, तुमने उनके प्रति एक बात उचित कही है।
जिनको स्वयं ब्रह्म का भी कारण माना जाता है,
कैसे अपना लक्ष्य-प्रभाव* जान सकता है ?८१।

लक्ष्य-प्रभाव* : जन्म, कुल

बहुत विवाद हो चुका, जैसा तुमने
उनके बारे में सुना है, उन्हें रहने दो ऐसे ही।
परन्तु मेरा हृदय अब प्रेम-भाव से उनमें स्थित है जो
किसी को ऐसे चाहता है तो आलोचना देखता नहीं।८२।

ऐ सखी, इस लड़के को हटाओ जिसको स्फुरित
उर्ध्व-अधर से पुनः-२ कुछ कहने की इच्छा होती है।
न केवल जो महात्माओं की बुराई करता है,
अपितु वह भी जो सुनता है, पातक-भागी है।८३।

अन्यथा अब मैं चली जाऊँगी, ऐसा कहकर जैसे ही वह बाला,
जिसके वक्ष से वृक्ष-छाल वस्त्र सरक गए थे, चलने को हुई उद्यत।
और वृषभराज* ने निज स्वरूप धारण करके, मुस्काते हुए
उसको चकित करते हुए, अपने नियंत्रण में कृत।८४।

वृषभराज* : वृष-ध्वज, शिव

उसको देखकर काँपती हुई व स्वेद से तर हुए अंगों सहित,
शैलाधिराज सुता ने स्वयं को एक पद चलने को किया उद्धत।
सिंधु नदी पथ में पर्वत की बाधा होने सी वह
अनिश्चित थी कि ठहरा जाए या करें गमन।८५।

ओ अवनतांगी उमा, आज से मैं तेरे तप द्वारा
क्रीत दास हुआ, जैसे ही चंद्रमौलि ने ये बोले शब्द।
तुरंत वह दुष्कर-नियमों के पालन से हुए कष्टों को गई भूल,
इच्छित फल प्राप्ति पर, कष्ट पुनः उत्साह देता है भर।८६।

इति श्री कलिदासकृत कुमारसम्भवे महाकाव्ये तपः फलोदयो नाम पंचम सर्गः हिन्दी रूपान्तर।

पवन कुमार,
(१२ नवंबर, २०१५ समय १६:२२ बजे)
(अनुवाद काल - १३ से ३० सितम्बर, २०१५)

कुमार-सम्भव :उमा सुरत वर्णन

कुमार-सम्भव
अष्टम सर्ग : उमा सुरत वर्णन

पाणि-ग्रहण उपरांत शैलराज- दुहिता
हर के प्रति यकायक चित्ताकर्षक*।
काम-सुख संवर्धक पुष्पादि के इत्रों से मन में
उठते विभिन्न रस-भावों द्वारा हुई ग्रसित।१।

चित्ताकर्षक* : मनोहर

वह पार्वती पुकारने पर भी प्रत्युत्तर नहीं देती थी
अवलम्बित* अंशुकों*की ही इच्छा करती थी।
तब भी पिनाकी* के रति सुख हेतु वह
सती उसके संग शयन करती थी।२।

अवलम्बित* : प्राप्त; अंशुक* :वस्त्र; पिनाकी* : हर

कुतूहल से जब कभी वह हर
दृष्टि डालता है सुप्त पार्वती के मुख पर।
तो वह मुस्कुराते हुए चक्षुओं को खोलती है और तुरंत
लज्जाते हुए बिजली गति से कर लेती है लोचन बंद।३।

नाभि-प्रदेश गया शंकर का कम्पित हाथ
उस पार्वती द्वारा हटा दिया जाता है।
उसके बाद उसके वस्त्र का अत्यंत दुष्कर
नीवीं-बंधन को स्वयं खोल दिया जाता है।४।

हे सखी, शंकर का यही रहस्य है,
इसी प्रकार निर्भय होकर सेवा करो।
सखियों द्वारा इस उपदेश से आकुल वह पार्वती प्रिय में
पूर्णतया अभ्यास करते हुए न भूलती थी समर्पण को।५।

वार्तालाप हेतु यदि तुरंत वह अनंग हर
काल्पनिक विषयों संबंध में कोई पूछता है प्रश्न।
तो वह दृष्टि से ही सहमति दिखाते हुए लज्जा-स्वरूप
अपना सिर हिला कर ही देती है उत्तर।६।

प्रिय द्वारा दोनों हथेलियों से हटाए गए अंशुकों को
वह पार्वती चुपके से कुछ यत्न से वापस खींचती है।
उस शूलिन* को ललाटलोचन* में देखती है और
रहस्य* से कुछ विचलित सी हो जाती है।७।

शूलिन* (शंकर); ललाटलोचन* (तृतीय नेत्र); रहस्य* :अंदर

निदर्यी आलिंगन में स्तब्ध* वह चुंबनों में
कर द्वारा चुपके से अधर-दान* लेती है हटा।
प्रभु* का अपनी नवोढ़ा को नख-दंत द्वारा प्रगल्भ* दंश व
प्रणय-सम्भोग करते देख कर मन्मथ* भी लज्जा से भर जाएगा।८।

स्तब्ध* : सन्न; अधर-दान* : ओष्ठ; प्रभु* : हर; प्रगल्भ* : तीखा; मन्मथ* : कामदेव

रति-क्रिया में अक्षत* अधरों का मुख-चुम्बन
व खरोंच-रहित अंगों को नखों द्वारा काटने से।
और प्रिय के इस अति-प्रचंड प्रेम को सहन अक्षम
वह पार्वती, इसमें कोई विपरीत बात नहीं है।९।

अक्षत* : कोमल

कुतूहल-वश रात्रि का सुरत-वर्णन जानने
को उद्यत सखीजनों को विभात* समय ।
निराश नहीं करती थी और लज्जावश
हृदय से त्वरित अनुभव करती थी वह।१०।

विभात* : प्रभात

और मुकुर* में प्रिय द्वारा पृष्ठभाग में छोड़े गए
परिभोग नखक्षत आदि सम्भोग-चिन्हों को देखती है।
और अनेक स्थानों पर स्थित ये-२ अंग सँवारने की
इच्छा से स्व-प्रतिबिम्ब देख लज्जा से भर जाती है।११।

मुकुर* : दर्पण

नीलकण्ठ द्वारा पार्वती का यौवन-आनंद लेने को
देखकर जननी मेना पुनरुज्जीवित सी हो गई।
निश्चय ही वधूजन और पति-वात्सल्य द्वारा
माता मानस* में शोक-मुक्त हो गई।१२।

मानस* : मन

स्थाणु* किसी बहाने से अनेक बार दिवसों* में भी
प्रिया पार्वती संग सुरत-कर्म में व्यस्त रहते, वह भी।
शनै-२ कामसुख आस्वादन करती हुई प्रेम प्रतिकूल
शील-स्वभाव त्यागकर मध्यम-अवस्था* प्राप्त हुई।१३।

दिवसों* : दिन; स्थाणु* : शम्भु; मध्यम-अवस्था* : गृहस्थ

वह प्रिय सखज* में हृदय गाढ़-आलिंगन करती है
प्रिय द्वारा प्रार्थित मुखमन* को मना करती है।
मेखला* में प्रणय परिचय हेतु सुहृद के चंचल हाथ को
लज्जा-भाव से रोकती हुई वह शिथिल सी हो जाती है।१४।

सखज* : मित्र; मुखमन* : चुम्बन; मेखला* ; कमरबंध

तब उन दोनों का अन्योन्य* अभूतपूर्व गूढ़-प्रेम
दिवसों* में किसी भी भाँति से इच्छा किया जाता है।
एक-दूजे की चाटुकारिता करते समय कदाचित अदृश्य अप्रिय
कटाक्ष निक्षेप* से क्षणमात्र के वियोग से कातर* हो जाते हैं।१५।

अन्योन्य* : परस्पर; दिवस* : स्वर्ग; निक्षेप* : भाव; कातर* : भीरु

यथा आत्म-सदृश हो वह वधू वर के प्रति अनुरक्त हो जाती है
तथैव वह वर उसके प्रति प्रेम-सिक्त जाता है, निश्चित ही जैसे।
जाह्नवी* सागर से पृथक नहीं है, वैसे ही आस्वादन करके उसके
अग्र-सलिल* का, वह समुद्र हो जाता एक परम निवृत* है।१६।

अन्वर* : अनुरक्त; जाह्नवी* : गंगा; अग्र-सलिल* : मुखरस; वृतिभाक्*: आस्वादन; निवृत* : आनंदित

एकांत में शंकर की निधुवन-उपदेश* की
शिष्यता प्राप्त करके वह युवती पार्वती।
निपुण-कौशल शिक्षित* हो गई, और
उस प्रकार गुरु-दक्षिणा देने लगी।१७।

निधुवन-उपदेश* : सुरत-मैथुन विद्या; शिक्षित* : अभ्यस्त

अधरोष्ठ को दंश-मुक्त करती पल्लव सम करों
वाली वह अम्बिका वेदना को क्षणमात्र ही में।
निज शीतलता से शांत करती है, जैसे क्रोध में
शूली* का मौलिचंद्र उन्हें शीतलता देता है।१८।

शूली* (शंकर)

शंकर ने भी चुम्बन लेते समय अलक*
हट जाने पर व खुल जाने से ललाट-नेत्र।
मुख द्वारा कमल-गंध उच्छवास करते हुए फुत्कार
भरी, पार्वती वदन* से भी निकलती सुगंध है।१९।

अलक* : लट; वदन* : मुख

इस प्रकार वृषध्वज* ने उमा के संग
शैलराज भवन में एक मास वास किया।
अतैव उन द्वारा ऐन्द्रिय-सुख मार्ग के परिभोग से
मन्मथ* अनुग्रहीत होता पुनरुज्जीवित हुआ।२०।

वृषध्वज* : हर; मन्मथ* : काम

अनुमान कर वह आत्मभू* हिमवन्त-
मन में आत्मजा* प्रति विरह-दुःख का।
अपने वृषभ द्वारा नाना-२ देशों की
अनंत यात्रा पर गतिमान हुआ।२१।

आत्मभू* : शिव; आत्मजा* : दुहिता

पार्वती-स्तनों से पुरस्कृत कृती* तीव्र
मरुत-गति से मेरु पर्वत निकट पहुँचकर।
और सुवर्ण-पत्र युक्त शिला-खण्ड को शैया*
बनाकर रात्रियों में सुरत* हेतु हुआ तत्पर।२२।

कृती* : हर; शैया*: बिस्तर; सुरत* : काम-क्रीड़ा

जैसे सागर-मंथन समय प्राप्त पवित्र सुधा-बूंदों का पान
करते हुए पद्मनाभ* शेषनाग वलय पर शैल सम स्थित है।
और वैसे ही पार्वती के वदन-कमल को चूमते हुए वह
शिव भ्रमर मदरांचल कटकों* में करता है वास।२३।

पद्मनाभ* : विष्णु; कटक* : शिखा

कैलाश उत्पाटन* समय दशानन रावण की
भीषण ध्वनि से भीत उस पार्वती के कंठ को।
मृदु बाहु-बंधन में लेकर जगदगुरु, एकपिंगल*-
गिरि* में विशुद्ध* शशिप्रभा* संग लेता है आनंद।२४।

उत्पाटन* : उत्पीड़न; एकपिंगल* : कुबेर; गिरि* : अलकापुरी; विशुद्ध* :निर्मल; शशिप्रभा* : चन्द्रिका

जैसे मलयाचल प्रदेशों में दक्षिण-अनिल* देवकुसुम* एवं
केसर संग चंदन-तरु वन-शाखाओं को कम्पित* करता है।
वैसे ही कदाचित सुरत श्रम से क्लांत* प्रिया को
वह चाटुकारिता से शीतल* करता है।२५।

अनिल* : मारुत; देवकुसुम* : लवंग; कम्पित* : शांत; क्लांत* : थक गई; शीतल*: प्रसन्न

तरंगिणी* में जलक्रीड़ा समय प्रिय द्वारा कनक*-कमलों
द्वारा ताड़ित करने एवं कर द्वारा करने से अम्बु*-क्षिप्त।
तथा उमा मुकुल* सम चक्षु बंद कर लेती है, तब मीन* की
पंक्तियों से उसकी कटि-मेखला होती है दो बार प्रदर्शित।२६।

तरंगिणी* : नदी; कनक* : सुवर्ण; अम्बु* : जल; मुकुल* : कली; मीन* : मछली

अयुग्मनेत्र* उस पुलोम* तनया* की अलकों को
सुचयनित पारिजात*-कुसुमों से है सजाता।
नंदन वन में सुर-वधूऐं उसे देखकर
चिरकाल तक करती हैं ईर्ष्या।२७।

अयुग्मनेत्र* : त्रयंबकम, त्रिनेत्र, शिव; पुलोम* : प्रसन्न; तनया* : तन वाली; पारिजात* : चाँदनी

अतएव गन्धमादन गिरि में शंकर पार्थिव* व अभौम*
सुखों को अनुभूत करता हुआ वनिता सखी* संग।
सूर्य के ताप में स्नान करते हुए लोहित*-
वर्ण का हो जाता है कदाचित।२८।

सखी* : उमा; पार्थिव* : लौकिक; अभौम* : दिव्य; लोहित* : लाल

वहाँ गन्धमादन में वह भगवान कांचन* शैल* के
तल में आश्रय लिए भास्कर* का नेत्रगमन* करता है।
सहधर्मिणी* को दायीं भुजा में आश्रय दिए
बहाने से उसको देखता है।२९।

कांचन* : सुवर्ण; शैल* : चट्टान; भास्कर* : सूर्य; नेत्रगमन* : दर्शन; सहधर्मिणी* : पत्नी

तेरे नेत्र-क्षिप्त होने से ही अरुण* तीसरे भाग
में रहकर पद्म की शोभा धारण कर लेता है।
जैसे प्रलयकाल में प्रजेश्वर*, दिवस को अहर्पति*
से हरकर जगत का ही संहार कर देता है।३०।

अरुण* : सूर्य; प्रजेश्वर* : शिव; अहर्पति* : सूर्य

विवस्वान* किरणों द्वारा जल-बिन्दु संयोग से, शून्यता
एक इन्द्र-चाप* का परिवेश धारण कर लेती है।
हे अवनते*, जैसे तुम्हारे व मेरे पिता हिमवत् ने
निर्झर* का गमन कर दिया है।३१।

विवस्वान* : सूर्य; इन्द्र-चाप* : धनुष; अवनते* : पार्वती; निर्झर*: प्रवाह

किञ्जलक* को सुखपूर्वक आधा खाकर
बिछौह पर कर्कश कण्ठ में करते हैं क्रंदन।
दैव के अधीन* चक्रवाक-मिथुन सरोवर में
अल्प-व्यवधान* से ही होते हैं अति-व्यग्र।३२।

किञ्जलक* : पद्म कुसुम; अधीन* : निम्न; अल्प-व्यवधान* : अंतर

प्रतिदिन प्रभात में स्थान परित्याग करके
दन्ती* सुरभित प्रिय लताओं के पल्लव।
और षट्पद* संग खिले रुह* युक्त
करते हैं जल ग्रहण। ३३।

दन्ती* : गज; षट्पद* : भ्रमर; रुह* : कमल

हे मितकथे*, पश्चिम-दिशा गत विवस्वान*
सेतुबंधन निर्मित सरोवर में व्याप्त।
सुवर्णमेव कांतिमय निज-प्रतिबिम्ब को
देखता है दीर्घ काल तक।३४।

मितकथे* : मितभाषिणि; विवस्वान* : सूर्य

सूर्य के अति-तीक्ष्ण ताप से सरों में
अल्प-जल कारण अति-पंकिल* को, यदि वहाँ।
मृणाल* अंकुर हैं तो यथापूर्व एक दंष्ट्री* वन-वराह*
यूथप अपने कुटिल दन्तों द्वारा देता है उखाड़।३५।

पंकिल* : कीचड़; मृणाल* : कमल; दंष्ट्री* : दंतधारी; वराह* : शूकर

हे पीवरोरु*, वृक्ष शिखर में लताऐं
गोल-चमकते सूरज से काञ्चनमयी हो गई ललित हैं।
दिवस के अंत में ऊष्मा शनै-२ क्षीण हो जाती है
यद्यपि मयूर बहुत जाता थक है।३६।

पीवरोरु*: उत्कृष्ट माँसल देह वाली

प्राची* क्षितिज में अंधकार प्रसार से
विसरित पंक हो जाता एक सम है।
जैसे सूर्य-आतप* से हृत जल से आकाश व
सरोवर किंचित एक भाँति ही होते प्रतीत हैं।३७।

प्राची* : पूर्व; सूर्य-आतप* : ऊष्मा

अस्पष्ट रूप से पर्णशाला-आँगन में मृग घूमते हैं,
स्त्रियाँ वृक्ष-मूलों को जल द्वारा सिंचित करती हैं।
वनों से अग्निहोत्र हेतु गाय प्रवेश करने से आश्रमों में
अग्नियों द्वारा प्रसन्नता-उदीरित* की प्रतिद्वन्द्विता सी लगी है।३८।

उदीरित* : व्यक्त

बद्ध कोश* वाला मुकुलित शतपत्र* कमल भी
अपनी अवशेष मुख-विवर को क्षणमात्र खोल।
खड़ा हो जाता है, अवकाश हेतु यह षट्पद* को
प्रीति-भाव से ही निवास ग्रहण करने देगा।३९।

कोश* : फल; शतपत्र* : कुशोशय*; षट्पद* : भौरा

प्रतीची* दिशा के दूर लग्न* में भानु* द्वारा निकसित
सम परिमित* रश्मियाँ लोहित*-वर्णी केसर*।
एक कन्या के मस्तक पर बन्धुजीव* का
तिलक लगाने जैसा हो रही हैं प्रतीत।४०।

प्रतीची* : पश्चिम; लग्न* : मुहूर्त; भानु* : सूर्य; लोहित* : लाल-वर्णी;
केसर*: किञ्जलक; परिमित* :कुछ-मात्र; बन्धुजीव* : जीवकुसुम-बंधूक

भानु-अग्नि के परिकीर्ण* तेज जैसे महर्षि
अश्वरथ सम अति गहनता से हृदयंगम करके।
सहस्रों बार सामवेद की ऋचाऐं गाते हैं,
किरणों की ऊष्मा को पी जाते हैं।४१।

परिकीर्ण* : विस्तृत

अतः जैसे दिवस में महासागर-सन्निधता में यह
भानु कुटिल तरंगें आने पर अस्त सा हो जाता है।
तथैव गगन-अवतरण पश्चात् पीतवर्णी मेघ,
हस्ती-कर्णों को कर्दप*-माला सी पहनाकर,
क्षण मात्र में ही विघटित हो जाते हैं।४२।

कर्दप* : कौड़ी

रवि के अस्त होने की स्थिति में व्योम* प्रसुप्त
हो जाता है, महान तेज ऐसी गति चला जाता है।
यावत रवि उत्थित है, प्रकाश करता है और तावत
तमस भी निश्चित ही संकोच से दूर ही रहता है।४३।

व्योम* : आकाश

संध्या द्वारा भी रवि के वन्द्य* पद
पर्वत-शिखरों में अस्त होकर हो जाते हैं समर्पित।
प्रातः पुनः उसके उदय होने पर पुरस्कृत होते हैं,
तो कैसे अस्त-समय तम कान करेंगें अनुसरण ?४४।

वन्द्य* : पूज्य

हे कुटिलकेशी पार्वती, तुम देखोगी कि
संध्या-वेला में रक्त-पीत-कपिश* वर्णी पयोमुचा*।
अपने अश्रुओं की चित्र-शलाका द्वारा ही विभिन्न
भाँति के अति-सुंदर दृश्य करते हैं प्रस्तुत।४५।

कपिश* : भूरा; पयोमुचा* : बादल

हे पार्वती, सांध्य समय स्वयमेव विभक्त* अस्तंगत
सूर्य आतप* को देखो, सिंह की केसरी जटाओं में।
पृथ्वी द्वारा धारित पर्वतों में, पल्लव-प्रसवों में,
तरुओं में, पर्वत-शिखरों में और आत्म* में।४६।

विभक्त* : पृथक-भावों में; आतप* : प्रकाश; आत्म* : स्वयं

संध्या होने पर वे तपस्वी वसुधा को
पादुकामूलों* से मुक्त करते हुए खड़े होकर।
अञ्जलि में पावन अम्बु* लेकर क्रिया करते हैं,
वे आदरणीय विधिसम्मत गूढ़ ब्रह्म*-मंत्रों का जप करते हैं।४७।

पादुकामूल* : ऐड़ी; अम्बु* : जल; ब्रह्म* : गायत्री

उस कारण से संध्या विधि-नियमों हेतु प्रस्तुत करके
मुझको भी विश्वास में लेकर होना तुम सक्षम।
हे मन्जु*-भाषिणी, विनोद-निपुण* सखियाँ
तब विनोद करेंगी तुम संग।४८।

मन्जु* : वल्गु, मृदु; विनोद-निपुण* : मसखरी

तब वह शैलराज सुता पार्वती पति-वचनों की
अवज्ञा से परे कुटिलता* होठों को चबाते हुए।
असहाय सी अपनी सखी विजया के समीप
जाकर वार्तालाप लगी करने।४९।

कुटिलता* : शरमा कर

ईश्वर ने भी सायंकाल उचित विधि
द्वारा मन्त्रों से संन्ध्या-अनुष्ठान किया।
और बिना बोले कुटिल* इच्छा से पार्वती समीप
पुनः आकर स्मित* संग पुनः उवाच किया।५०।

कुटिल* : शरारत; स्मित* : मुस्कान

हे अनियमित*-कोपिनी पार्वती, क्रोध त्याग दो, मैं तुम्हें
संध्या द्वारा प्रणाम करता हूँ, किसी अन्य प्रकार से नहीं।
क्या तुम मुझे चक्रवाक पक्षी सम प्रवृत्ति वाले तेरे
संग धर्म के साथ चलने वाला नहीं हो जानती ?५१।

अनियमित* : अकारण

हे सुतनु* पार्वती, पूर्व समय में स्वयंभू* द्वारा
कृश शरीर से निर्मित पितृ* तन करके प्राप्त।
प्रातः-सायं उसकी पूजा करते हैं, हे मानिनी,
उस ब्रह्म द्वारा मेरा भी यहाँ संध्या में है गौरव।५२।

सुतनु* : सुगात्री; स्वयंभू* : चतुरानन, ब्रह्म; पितृ* : अग्नि, वायु, आदि

इस संध्या के अब तिमिर प्रवृत्ति से
पीड़ित भूमि की भुक्ता सम स्थिति है।
देखो, तट पर तमाल वृक्ष पंक्तियाँ एकत्र
होकर नदी सम प्रतीत हो रही हैं।५३।

सांध्य समय सूर्यास्त होने पर शेष प्रकाश
पश्चिम दिशा में दिखता है एक रक्त-रेखा सम।
जैसे कृपाण के इधर-उधर चलाने से
हो जाती है युद्ध भूमि रक्त-वर्णित।५४।

हे दीर्घनयिनी पार्वती, यामिनी* एवं दिवस के
संधि-समय अर्थात संध्या में सुमेरु पर्वत द्वारा।
सम्भव तेज* हटा लिया जाता है, दिशाओं में अबाधित
अंधकार से ऐसे तमस का आवरण विस्तृत है हो जाता।५५।

यामिनी* : रात्रि; तेज* : प्रकाश

न ऊर्ध्व* दृष्टिप्रसार होता है, न नीचे भी,

न पार्श्व*, न मुखपृष्ठ* में और न पीछे ही।
यह लोक निशा में प्रचुर* तिमिर* आवृत होने से
जैसे गर्भ में निवासित हो, ऐसे हो रहा है प्रतीत ही।५६।

ऊर्ध्व* : ऊपर; पार्श्व* : बाजुओं में; मुखपृष्ठ* : सामने; प्रचुर* : दीर्घ; तिमिर* : अंधकार

शुद्ध एवं आबिल* का, स्थावर एवं जंगम का
और कुटिल एवं आर्जव* का, जो गुण परस्पर जुड़े हैं।
तमस से सब ही समीकृत* हो जाते हैं, हट है जाता
महत्त्व व असाधन का अंतर, जिसे धिक्कारा है जाता।५७।

आबिल* : मलिन; आर्जव* : सरल; समीकृत* ; एकरूप

अब यज्वानों* के प्रिय शर्व* का तमस
तो निषिद्ध होने हेतु ही होता है उदित।
हे पुण्डरीकमुखी*, देखो पूर्व दिशा भाग में,
कैतक* वृक्ष पराग-आवृत हो रहे हैं प्रतीत।५८।

यज्वान* : पवित्र विधि वाला; शर्व* : हर; पुण्डरीकमुखी* : कमलमुखी; कैतक* : देवदारु

मंदर पर्वत पृष्ठ दूर छिपा गोल शशभृत*
सितारों संग निशा में पीछे से वचनों को सुनेगा।
और मेरे द्वारा प्रिय सखियों से समागत*,
तुम पार्वती को निहारेगा।५९।

शशभृत* : चन्द्र; समागत* : घिरी

पूर्व दिशा में दिवस क्षय पर सायं में पूर्व-दृष्ट
तनु चन्द्रिका की स्मिता है बाह्य-निर्गमन।
यथा चन्द्रवृत्त के मृदु गूढ़ का रहस्य-ज्ञान सायं को ही होता,
तथैव रात्रि होने पर सखी* के ये मर्म मम हेतु होते उद्गिरत*।६०।

सखी* : उमा; उद्गिरत* : प्रकाशित

पक्व फलिनी* और फलों की शोभा से
सरोवर-जल में अति-दूरस्थ नभ में हिमांशु* द्वारा।
प्रतिबिम्बों को चिन्हित करके चक्रवाक-
मिथुन* परस्पर स्पर्धा है करता।६१।

फलिनी* : फली; हिमांशु* : चन्द्र; मिथुन* : जोड़ा

ओषधिपति* के कर* तेरे
कर्णवतंस*-रचना करने में हैं सक्षम।
अकठोर* यवांकुर* तेरे नखों के
अग्र-भागों* को सजाने में हैं निपुण।६२।

ओषधिपति* : इंदु, चन्द्र; कर* : हाथ; कर्णवतंस* :आभूषण;
अकठोर* : कोमल; यवांकुर* :जौं नव-पादप; नख-अग्र* : उँगलियाँ

उँगलियों द्वारा ही शशि केश संचयन हेतु
मरीचियों* द्वारा तिमिर को ग्रहण करके।
सरोजलोचन* की कली बनाकर
वदन को चूमता हैरजनी* के।६३।

मरीचि : रश्मि, किरण; सरोजलोचन* : कमलनयन; रजनी* : यामिनी, रात्रि

हे पार्वती, नव-इंदु रश्मियों द्वारा नभ-तल में
तिमिर* को आंशिक रूप से हटता देखो।
द्विरद* क्रीड़ा से कलुषित मानस-
सरोवर जल को शांत होते ही देखो।६४।

तिमिर* : तम; द्विरद* : गज

उदय समय के रक्तिम* भाव को त्यागकर
चन्द्रमा शीघ्रता से परिशुद्ध* मंडल* हो जाता है।
निश्चित ही निर्मल प्रकृति वालों में काल के दोष के कारण
जो विकार पैदा होते हैं, वे चिर-स्थायी नहीं रहते।६५।

रक्तिम* : लालिमा; परिशुद्ध* : शुभ्र; मंडल* : गोल, वृत्त

हिमालय के उन्नत शिखरों में शशि* प्रभा स्थित है
निम्न स्तर संश्रयों* में निशा का तम ही दर्शित है।
वेधस* के गुण-दोष प्रकल्पना* निश्चित ही
आत्म-सदृश की प्रवृत्ति* के अनुसार है।६६।

शशि* : चन्द्र; संश्रय* : स्थल; वेधस* : वीर; प्रकल्पना* : बखान; प्रवृत्ति* : गति

इंदु द्वारा जनित किरण-विसरण* से
गिरि में जल-बिंदु चन्द्र जैसे ही कांत* लगते हैं।
तरु-अंचल में निद्रित मयूर, चटका* आदि
असमय ही वर्षा-भय से जाग जाते हैं।६७।

विसरण* : प्रसार; कांत* : प्रिय; चटका* : चिड़ियाँ

हे अविकल्प* सुंदरी, अमृतांशु*
अब कल्पतरु शिखाओं में प्रस्फुर* है।
कुतूहलवश वृक्षों से लम्बित* मोती-मालाओं
की परिगणना हेतु उसकी किरणें उद्यत हैं।६८।

अविकल्प* : अविवादित; अमृतांशु* : शशि; प्रस्फुर* : चमक; लम्बित* : लटकते

इस गिरि के उन्नत-अवनत* भागों में
तिमिर सहित चन्द्रिका भक्ति-भाव से।
मत्त हस्तियों सम बहु-विधानों से
करती सम्पदा न्यौछावर है।६९।

उन्नत-अवनत* : ऊँचे-नीचे

इस चन्द्र की नूतन निर्मल पीत किरणों से कुमुदों में
भृंग* प्रवर्तित* भाव से नाद करते हैं यकायक।
गुनगुनाते हैं, जैसे ननिहाल में रहने वाला
अक्षम बालक ले लेता है वहाँ का प्रभार।७०।

भृंग* : भ्रमर; प्रवर्तित* : मुक्त

हे अत्यंत-कोपिनी चण्डी*, मात्र मरुत* चलने से
कल्पतरु की लटकती शाखा, पल्लव आदि।
अंशुक सम प्रकट होते हैं, शुद्ध ज्योत्सना* द्वारा
जैसे जनित रूप का होता है संशय ही।७१।

चण्डी* : पार्वती; मरुत* : पवन; ज्योत्सना* : प्रभा

शशिप्रभा*-लव* शाखाओं के नीचे
पतित जर्जर पेशल* पुष्प-पत्र।
तेरी उँगलियों द्वारा उदधृत* केश*-
बद्ध सम भ्रम से होते हैं प्रतीत। ७२।

शशिप्रभा* : चन्द्रिका; लव* : टुकड़ें; पेशल* : कोमल; उदधृत* : पकड़े गए; अलका * केश

हे चारुमुखी* पार्वती, जैसे स्फुरित* शशि-मण्डल
योग-तारे संग शीघ्रता से वैसे ही जुड़ जाता है।
जैसे वर नवदीक्षा द्वारा भय से काँपती हुई
कन्या संग शीघ्रता से चला जाता है।७३।

चारुमुखी* : उज्ज्वल-आनिनी; स्फुरित* : कम्पित

हे चन्द्रबिम्बर्निहिताक्षि*, चन्द्रिका प्रतिबिम्ब द्वारा
प्रदीप्त यह निर्मल-विकसित-गोरा शरकंड*।
हो रहा है तुम्हारे उभरे गण्डों पर
दो रेखाओं सम उल्लासित।७४।

चन्द्रबिम्बर्निहिताक्षि* : पार्वती; शरकंड* : सरकंडा; गण्ड* : गाल

लोहित* अर्कमणि* स्फटिक पात्र में अर्पित
कल्पतरु कुसुम-मद्य से अधिदेवता गन्धमादन के।
स्वयं ही विभ्रम होते हैं जैसे तुम्हारी
यह उपस्थिति* स्थितिमती* है।७५।

लोहित* : लाल; अर्कमणि* : सूर्यकान्त; उपस्थिति* : प्राप्त; स्थितिमती* : अवस्था

हे विलासिनी पार्वती, यहाँ तेरे इस
आर्द्र-केसर सुगन्धित मुख एवं रक्त जैसे।
नयनों के मधु को प्राप्त करके कौन
विशेष गुणों को न देखेगा ?७६।

अथवा सखीजन उसकी भक्ति स्वीकार
कर इस अनंग दीपक की सेवा में तत्पर।
ऐसा उदार वक्तव्य कर शंकर ने
अम्बिका* के रूप-मद्य का किया पान।७७।

अम्बिका* : पार्वती

उस मधु-पान द्वारा उत्पन्न* विकार में भी
पार्वती साधुओं की है चित्तचमत्कारिणी*।

विधि* योगवश अचिन्तनीय* व अति-
सौरभत्व* को प्राप्त है आम्र-भाँति।७८।

उत्पन्न* : सम्भव; चित्तचमत्कारिणी* : मनोहरी; विधि* : दैव;
अचिन्तनीय* : अवर्णनीय; सौरभत्व* : सुरीलेपन

तत्क्षण वह सुवदना* लज्जा निवृत कर
प्रवृद्ध अनुराग से शयन सुख को हो गई प्राप्त।
और दोनों शूली* की कामाग्नि के अधीनकृत।७९।

सुवदना* : पार्वती; शूली* : शंकर

भ्रमित नयन और स्खलित* वचन से
स्वेद* युक्त अकारण मुस्कुराते मुख द्वारा।
ईश्वर तब तक तृष्णा से चिरकाल उमा के
मुख को मदपार* वश चूमता रहता था।८०।

स्खलित* : लड़खड़ाते; चश्षु* : तृष्णा; मदपार* ; वासना

हर उस पार्वती को तपते हुए कटिसूत्र* में
असहनीय त्वरित जंघाभार से सिद्धि द्वारा।
सम्पूर्ण मणिशिला वाले गृह में
भोगसाधन हेतु प्रवेश है कराता।८१।

कटिसूत्र* : मेखला

वहाँ मणिभवन में सर्दी में वह शंकर प्रिया संग
हंस सम धवल* चादर ओढ़कर शयन करता है।
जैसे रोहिणीपति* जाह्नवी* के रेतीले तीरों के चारु-
दर्शनार्थ शर्मीले मेघ द्वारा आच्छादित हो जाता है।८२।

रोहिणीपति* : चन्द्र; धवल* : शुभ्र; जाह्नवी* : गंगा

हर द्वारा निर्दयता से केश कर्षण* से क्लिष्ट
भाल-चन्द्र क्रोध में हो सुधबुध खो देता है।
उसके अर्पित नख आसानी से मेखला-बंधन देते हैं हटा
अतैव पार्वती-रत हुआ वह शंकर अतृप्त ही है रहता।८३।

कर्षण* ; खींचना

केवल प्रियतमा की दया से ही
उस ईश्वर की सुरत-क्रिया थी अनवरत।
उसके कसे स्तनों को पकड़ ईश्वर ने नक्षत्रों को पंक्तियों में
एक ओर पीछे झुका दिया, नेत्र-कुतूहल* से हुए जाते हैं बंद।८४।

नेत्र-कुतूहल* : निद्रा

वह उचित स्त्रोत में विद्वान शंकर
कनकपद्म सरोवरों की भाँति प्रसन्न।
प्रभात समय में किन्नरों द्वारा गए जाने वाले
मंगल प्रेम रागों द्वारा मूर्च्छा से है जाता जाग।८५।

तभी पद्म पहचान में निपुण मारुत गन्धमादन
वन के अंत में मानस सरोवर द्वारा रचित।
उर्मि रूप में आलिंगन में शिथिलित उस
दम्पत्ति के सम्मान हेतु हैं उत्थित।८६।

तत्क्षण मारुत-झोंकों के समय आकृष्ट-नयन
वह हर पद-पंक्ति की उँगलियों द्वारा।
प्रियतमा की उरुमूल* को संयम करके
ढाँप देता है प्रशिथिल*-वस्त्रों द्वारा।८७।

उरुमूल* : जांघ; प्रशिथिल* : ढीले, खुले

अधरों के कहीं भी गाढ़-दंत से क्षत एवं अलकों*
में जागती रहती आकुल रक्त-नेत्र व भिन्न-२।
तिलक* बने प्रिया पार्वती के मुख को देखकर
उतावला एवं मदहोश हो जाता है वह हर।८८।

अलक* : केश; आकुल रक्त-नेत्र* : कषाय-लोचन; तिलक* : चिन्ह

निर्मल प्रभात होने पर भी चरण के लाक्षारस से
लाँछित* ओढ़े गए उत्तरच्छद* के मध्य शयन में।
एकत्रित अस्त-व्यस्त मेखला-सूत्र के बावजूद उस
हर द्वारा निर्लज्जता से पार्वती को नहीं विराम है।८९।

लाँछित* ; चिन्हित; उत्तरच्छद* : चादर, प्रच्छदपटी

पार्वती-सखी विजया द्वारा सेवा-इच्छा निवेदन पर
भी दिवस-निशा प्रिया के मुख का मदिरापान करता।
और अतिशय सुख वृद्धि कारण से प्रियतमा के प्रेम में
अदृश्य सा हुआ, वह हर दर्शन नहीं है देता।९०।

दिवस-निशा में समान रूप से शम्भु ने पार्वती संग
वहाँ परस्पर शत* ऋतुऐं अर्थात बिताऐं २५ वर्ष।
समुद्र-अंतर्गत धधकती ज्वाला से जल-प्रवाह भाँति ही
उसकी सुरत-सुख तृष्णा* न होती थी शांत।९१।

शत* (सौ); तृष्णा* : अभिलाषा

इति श्री कालिदास कृतौ कुमारसम्भवे महाकाव्ये
उमासुरत वर्णनम् नाम अष्टमः सर्गस्य हिन्दी रूपांतर।

कुमार-सम्भव : उमा-प्रदानो

कुमार-सम्भव : उमा-प्रदानो

षष्ठ: सर्ग

तदुपरांत गौरी ने अपनी सखी को दिया निर्देश
एकांत में विश्वात्मा* को इस रहस्य का देने संदेश।
कि विवाह-हेतु मेरा दाता है पर्वतराज हिमालय
अतः उन्हीं को माना जाए इस विषय में साधक*।१।

विश्वात्मा* : शिव; साधक* : प्रमाण

उस सखी द्वारा प्रिय* को संदेश प्रेषित
व उसपर दृढ़-विश्वास कर वह गई हो निश्चिंत।
जैसे प्रतीक्षा करती नव आम्र-शाखाऐं कोकिला-मुख से
गान सुनकर कि मधु निकट है, हो जाती हैं आश्वस्त।२।

प्रिय* : शिव

काम पर शासन करते हुए उस शिव ने
'ऐसा ही होगा' की प्रतिज्ञा करके कष्ट* से।
किसी तरह उमा से विदाई ली, उसके बाद उसने
ज्योतिर्पुंज सप्तर्षियों* का स्मरण किया मन में।३।

कष्ट* : कठिनता; (सप्तर्षि* : वशिष्ठ, भारद्वाज, जमदग्नि, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र एवं कश्यप)

निज प्रभा-मण्डल से
व्योम को कान्तिमान करते।
तुरन्त प्रस्तुत हुए तपोधनी सप्तर्षि
प्रभु के पुर में संग अरुन्धती।४।

आकाश-गंगा प्रवाह में गोता लगाते
जहाँ दिग्गजों के मद से गन्ध निकलती है।
तीरों पर उगने वाले कल्पतरु कुसुमों को,
उसकी तरंगें धारण करती हैं।५।

मौक्तिक यज्ञोपवीत किए धारण,
सुवर्ण वृक्ष-छाल वस्त्रों में, व पहने माल्य।
कल्पतरु सम प्रतीत होते, संसार को हुए तजते
उन्होंने किया ग्रहण है वानप्रस्थ आश्रम।६।

ध्वज झुकाए सहस्र-रश्मि*,
अपने अश्वों को किए नीचे।
और प्रणाम करने हेतु जिनको

देखता है ऊपर की ओर।७।

सहस्र-रश्मि* : भास्कर

कल्पान्त* समय महावराह के दंतों पर
जल-प्लावन से धारण की गई पृथ्वी संग।
वे लता सम आसक्त* बाहुओं से
पकड़कर करते थे निलय*।८।

कल्पान्त* : महाप्रलय; आसक्त* : क्षीण; निलय* : आराम

विश्वयोनि ब्रह्म के बाद सृष्टि का
शेष निर्माण करने के कारण।
पुराविदों द्वारा पुरातन - कर्ता
के रूप में उनकी है प्रतिष्ठा।९।

और जो यद्यपि पूर्व-जन्मों के अपने
विशुद्ध तप-फलों का आनंद हुए लेते।
जो फलीभूत हुए अभी हैं
तथापि रहते तपोनिष्ठ ही हैं।१०।

उन ऋषियों में मध्य साध्वी अरुन्धती,
दृष्टि पति के पादों में अर्पित किए अपनी।
अति दीप्तिमान है, जैसे वह सिद्धि-
तप की है साक्षात् मूर्ति।११।

ईश्वर ने उसको व मुनियों को अगौरव भाव से देखा
स्त्री एवं पुरुष में कोई ऐसा भेद नहीं जाता देखा।
क्योंकि साधुओं का चरित्र ही
मात्र सम्मानीय है होता।१२।

शम्भु में उस अरुन्धती के दर्शन द्वारा
दारा-परिग्रहण हेतु इच्छा बहुतर हो गई।
क्रिया में धर्म-कार्यों का निश्चय ही
मूल कारण है सद्-पत्नी।१३।

धर्म द्वारा ही शर्व* के
कदम पार्वती के प्रति बढ़े।
साँस ली आशा की तब पूर्व-
अपराध से भीत काम के मन ने ।१४।

शर्व* : शिव

आनंद से त्वचा के रोऐं खड़े हुए
वेद-वेदांग पारंगत उन मुनियों ने।
यूँ कहा, जगत-गुरु का
सम्मान करते हुए।१५।

वेद जो हम द्वारा अध्ययन किए गए हैं,
यज्ञ जो अग्नि में किए गए हैं विधिपूर्वक।
और तप हमने किए हैं होते हुए तप्त,
आज परिपक्व तुम द्वारा इन सबका फल।१६।

हे जगतों के अधिपति, हम
सब तुम्हारे द्वारा निर्मित हैं।
हे ब्रह्म को भी मन में रचने वाले,
तू बाह्य वस्तु है हमारे मनोरथ से।१७।

वह जिसके चित्त में तुम हो बसते,
निश्चय ही सभी भाग्यशालियों में श्रेष्ठ है।
फिर भी क्या कहिए उसके विषय में
जो बसता तुम ब्रह्म-योनि के मन में।१८।

सत्य ही उच्च पद पाया है
हमने अर्क* और सोम* से।
परन्तु आज वह हो गया उच्चतर है
तेरे स्मरण करने के अनुग्रह से।१९।

अर्क* : सूर्य; सोम* : चन्द्र

तुम्हारे द्वारा संभावित सम्मान से
अपने बारे में हम सोचते महान हैं।
प्रायः श्रेष्ठतरों द्वारा दिए जाते सम्मान से
स्वगुणों प्रति होता आदर उत्पन्न है।२०।

ओ विविध-अक्षियों वाले, विदित नहीं है कारण

क्या है तुम्हारे द्वारा हमारे स्मरण होने से सम्भव ?
तुम तो आत्मा में प्राणियों की
रहते हो पूर्व से ही।२१।

तुम साक्षात्दृष्टि गोचर हो और तथापि हम
तुम्हें तुम्हारी सत्य-प्रकृति में न जानते हैं।
कृपया प्रसन्न होवों और अपने मन की कहो
क्योंकि तुम बुद्धि पथ से जाने न सकते हो।२२।

तीन में से कौन सा तुम्हारा रूप है ?
क्या जिसके द्वारा विश्व सृजन करते हो,
या जिसके द्वारा इसका पालन करते हो,
या तत्पश्चात जिससे इसका संहार करके
मूल रूप में पुनः लाते हो ?२३।

अथवा हे देव, हमारी चाहे
महती प्रार्थना को एक ओर दो रहने।
प्रथम बार में जो तुम्हारी इच्छा से है उपस्थित,
हमको आदेश करो कि हम क्या करें ?२४।

तदुपरांत परमेश्वर ने
मौलि-स्थित इंदु की तन्वी* प्रभा।
अपने दन्तों की शुभ्र - रश्मियों से
बढ़ाते हुए यूँ उत्तर दिया।२५।

तन्वी* : अल्प

तुम सबको विदित है जैसा कि
मेरी प्रवृत्ति स्वार्थी नहीं है कोई भी।
और मेरी अष्ट-मूर्तियों* में निश्चय ही
मैं सूचित हूँ भाँति इस ही।२६।

(* अष्ट-मूर्ति: क्षिति (पृथ्वी), जल, अग्नि, वायु, आकाश, सोम एवं सूर्य)

जैसे तृष्णा आतुर चातक हेतु वृष्टि
प्रतीक्षा करता है तड़ित्वान मेघ की।
ऐसे ही शत्रु द्वारा पीड़ित देवों द्वारा
पुत्र-उत्पादन हेतु है याचना मेरी।२७।

इस कारण से पुत्र-उत्पन्न हेतु मैं पार्वती की
अतः इच्छा करता एक भार्या रूप में लेने की।
जैसे एक यजमान यज्ञ-हवियों हेतु
कामना करता है अरणी प्राप्ति।२८।

आप मेरे इस अर्थ हेतु माँगो
हिमालय से मिल पार्वती को ।
सदुनिष्ठों* द्वारा कल्पित कृत्य
विपरीत परिणाम न लाते हैं सम्बन्ध।२९।

सदुनिष्ठों* : शुभेच्छुओं

जानिए कि उस हिमवान के संग
सम्बन्ध में मैं भी नहीं हूँ भ्रमित।
वह उन्नत, स्थितमता* व
करता है पृथ्वी-भार वहन।३०।

स्थितमता* : धैर्यवान

उसकी कन्या हेतु उससे किस प्रकार वार्ता करनी है,
आपको उपदेश देने की आवश्यकता है न।
क्योंकि साधु भी आपके द्वारा नियत
करते हैं आचार-नियमों का पालन।३१।

आर्या* अरुन्धती भी वहाँ
व्यापार* करने में समर्थ है।
प्रायः इस तरह के कृत्य में
गृहिणियाँ होती निपुण हैं।३२।

आर्या* : पूज्या; व्यापार* : सहायता

तब आप हिमवत्पुरम के औषधिपुरम
नगर को कार्यसिद्धि हेतु पड़ों निकल।
होगा हमारा संगम पुनः
महाकोशी नदी-प्रपात ही पर।३३।

संयमियों में प्रमुख शिव

हो गया परिणयोन्मुख जब।
तो प्रजापति-उत्पन्न अन्य तपस्वियों ने भी
भार्या न लेने की लज्जा दी तज।३४।

उसके बाद 'ॐ', ऐसा कहकर
मुनिमण्डल ने प्रस्थान किया।
भगवान भी पूर्व संकेतित
महाकोशी-प्रपात को प्राप्त हुआ।३५।

वे परम ऋषि भी मन की गति से
और खड्ग सम श्याम गगन में।
उड़कर उछाल लगाते
पहुँच औषधिपुरम गए।३६।

समय के साथ नगर जो यहाँ था बसाया गया
जैसे अलका-नगरी उपनिवेश ही प्रतिस्थापित हो किया।
जो वैभव, सम्पदा का केंद्र हो और जैसे स्वर्ग से
अतिरिक्त विदाई के कारण जन यहाँ आ बसे हैं।३७।

जो गंगा के स्रोत से परिलक्षित* हुई है,
जिसके प्रान्तर* में औषधियाँ हैं चमक रही।
बृहत मणिशिलाओं से जिसकी भित्तियाँ* बनी
और मनोहर हैं गुप्त सुरक्षा स्थल भी।३८।

परिलक्षित* : घिरी; प्रान्तर* : दुर्ग; भित्तियाँ* : दीवार

जहाँ हस्ती हैं सिंह-भय विजित,
जहाँ अश्व बिल योनि* के हैं।
यक्ष व किंपुरुष जहाँ के नागरिक
और वन देवियाँ योषिताऐं हैं।३९।

योनि* : प्रजाति

जहाँ मेघ-सिक्त शिखर वाले निकेतन में
मृदंग-ध्वनि प्रतीत होती मेघ-गर्जना सम है।
और केवल उनकी थापों ही द्वारा
अंतर किया सकता है जा।४०।

जहाँ नागरिकों द्वारा भवनों के ऊपर फहराने हेतु
श्री-पताका निर्माण की आवश्यकता होती न।
निज चंचल लहराते विटप-पल्लव अंशुकों ही से
ध्वज की सुंदरता प्रदान करते हैं कल्प-वृक्ष।४१।

स्फटिक मणि-जड़ित महलों के
जहाँ मद्यपान हेतु कक्षों में।
रात्रियों में नक्षत्रों का प्रतिबिम्ब
प्रतीत होता पुष्प-उपहार सम।४२।

अभिसारिकाऐं मेघाच्छादित निशाओं में भी
जहाँ घोर अंधकार से हैं रहती अनभिज्ञ।
क्योंकि उनके प्रेमियों के पास ले जाने वाले पथ
चमचमाती औषधि प्रकाश से रहते हैं दर्शित।४३।

जहाँ वय* केवल यौवन अंत तक बढ़त है,
जहाँ काम-बाण के अतिरिक्त कोई मृत्यु है न।
केवल रति - खेद* निद्रा ही
जहाँ बनाती है संज्ञा-शून्य।४४।

वय* : आयु; रति-खेद* : काम-सुख स्खलन

जहाँ ओष्ठ कम्पित, भृकुटि चढ़ाती,
एवं ललित उँगली-संकेतों से कोप करती।
प्रेमी याचना करते वनिताओं से
जब तक वे प्रसन्न न हैं होती।४५।

और सुवासित गिरि गन्धमादन
बाह्य स्थित जिसके उपवन।
स्वर्गिक सन्तानक* तरुओं की
छाया में सोते हैं यात्री विद्याधर।४६।

सन्तानक* : चम्पक

इसके बाद उन दिव्य मुनियों ने
हिमवत्पुरम को देखकर उसे भ्रम से।
स्वर्ग-नगरी मानते हुए अपने यज्ञादि,
पवित्र संस्कार की सोची करने।४७।

उन्मुख द्वारपालों को देखकर
अग्निवर्ण की निश्छल सहित जटाभार।
वे मुनि गिरिपुरम में आकाश से
गति से उतरें।४८।

वरिष्ठों का अनुसरण करती आकाश से
उतरी वह मुनि-परम्परा* नगर के।
सरोवर - जल में भास्कर के
प्रतिबिम्बों सम चमकती दिखती।४९।

मुनि-परम्परा* : श्रृंखला

सार - गुरु* सहित पदन्यास से
वसुंधरा दबाते हुए गिरिराज दूर ही से।
उनकी आवभगत एवं करने पूजा
हेतु अर्घ्य लेकर आगे बढ़ा।५०।

सार-गुरु* : महद देह

ताम्र-वर्णी अधर, उन्नत देवदारु सम
वृहद बाहु, शिला सम बलवान वक्ष-स्थल।
स्वभाव से ही वह हिमवत
रूप में था सुव्यक्त।५१।

शुद्ध कर्मों से उस हिमवान ने
शास्त्रोक्त विधि द्वारा सत्कार से ।
उन मुनियों को स्वयं प्रवेश कराया
मार्ग दिखाते हुए अन्तः-पुरम में।५२।

दिव्य विभूतियों को विराजमान
वहाँ कराकर वेत्रासन* पर।
उस भूधरेश्वर ने भी आसन लेते अंजलि-बद्ध
अपनी वाणी द्वारा उवाच किया यह।५३।

वेत्रासन* : बेंत का आसन

सबका दर्शन मुझे प्रतीत होता ऐसा
आप जैसे है बिना मेघ उदय के वर्षा।
तथा बिना कुसुम के फल और मैं
कोई कारण नहीं सोच पा हूँ रहा।५४।

आपके इस अनुग्रह से मुझे है लगता
जैसे मैं मूढ़ से बुद्धि में प्रकाशमान हूँ गया।
और जैसे सुवर्ण में आरूढ़ हो गया हूँ लोह से
और जैसे भूमि से देवलोक में ।५५।

होकर आज से प्रारम्भ
आऐंगे शुद्धता हेतु प्राणी मेरे पास।
क्योंकि जिसे आराधना हेतु अधिष्ठित
किया जाता है, उसे कहते है तीर्थ।५६।

ओ द्विजोत्तम, अपने को मैं
दो तथ्यों से पवित्र लगा हूँ मानने।
एक तो मेरी मूर्धा* पर गंगा-प्रपात
और दूजे तुम्हारे धुले पादों के जल से।५७।

मूर्धा* : शीर्ष

मैं अपनी द्विरूप वपु* में भी
स्वयं को विभक्त* मानता हूँ अनुग्रहित।
जंगम तुम्हारे दास के रूप में है और
स्थावर में तुम्हारे चरण हैं अंकित।५८।

वपु* : देह; विभक्त* : पृथक

आपके इस अनुग्रह की संभावना से
उठकर मेरे दिगन्त व्याप्त अंग भी।
वर्धित* आनंद समाने में हैं असमर्थ,
और हुए जाते हैं मूर्छित।५९।

वर्धित* : बढ़ते

आप विवस्वतों* के दर्शन से न केवल
दूर हो गया है मेरी गुहाओं का तम।
अपितु रजस से भी परे मेरी
अन्तरात्मा का तम गया है हट।६०।

विवस्वतों* : भास्वत, तेजस्वी

मैं तुम्हारे हेतु कोई कर्त्तव्य नहीं हूँ देखता और यदि
कुछ ऐसा है तो क्या असम्भवतुम्हारी इच्छा द्वारा ?
मैं मानता हूँ आपका आगमन यहाँ
मुझे पावन करने हेतु ही है हुआ।६१।

तथापि अपनी कोई भी आज्ञा
कृपया मुझ किंकर* को देवें।
क्योंकि प्रभुओं की विनियोग*
को ही अनुग्रह मानते हैं।६२।

किंकर* : भृत्य, सेवक; विनियोग* : आज्ञा

ये हम अर्थात मैं, दारा मेना व यह
कुल प्राणभूता* कन्या हैं प्रस्तुत।
बोलो, आप लोगों का यहाँ कार्य शेष है या है इच्छा
किसी बाह्य-वस्तु* की, आपका न होगा अनादर।६३।

प्राणभूता* : जीवन; बाह्य-वस्तु* : सुवर्ण, रत्न आदि

ऐसा उवाच हिमालय का
गुफा-मुख से था गूँज रहा।
जैसे दो बार प्रतिध्वनित है होता।६४।

तब ऋषियों ने कथा-प्रसंगों में प्रगल्भ
अंगिरस को उवाच हेतु की प्रार्थना।
उसने भूधर को यूँ उत्तर दिया।६५।

यह सब जो कहा तुमने,
तुम्हारे ही हेतु है लाभ अतिरिक्त।
तुम्हारा उन्नत-मन और शिखर-उच्च
दोनों ही हैं सदृश।६६।

निश्चय ही स्व स्थावर रूप में
तुम विष्णु जाते हो कहे।
क्योंकि कुक्षि* सब चर-अचर
प्राणियों का आधार गया है बन।६७।

कुक्षि* : उदर

शेष नाग अपने मृदु मृणाल* जैसे
फणों द्वारा पृथ्वी धारण सक्षम है कैसे ?
यदि तुम रसातल* मूल तत्व से
उसे पादों द्वारा अवलंबन न देते ?६७।

मृणाल* : कमल; रसातल* : पाताल-पर्यन्त

तुम्हारी कीर्ति और समुद्र ऊर्मियों से
अविच्छन, अदूषित एवं अबाधित सरिताऐं।
अपने पुण्यों द्वारा लोकों को पवित्र करती हैं।६९।

परमेष्ठिन* पदों ही द्वारा
जैसे गंगा की है श्लाघा।
वैसे ही तुम्हारे उन्नत भाल के
द्वितीय प्रभाव* से उसकी है प्रतिष्ठा।७०।

परमेष्ठिन* : परमेश्वर; प्रभाव* : स्रोत

हरि की महिमा वामन अवतार में
ऊर्ध्व*, अधम* पार सर्व-व्याप्त है।
जब वह तीन कदम भरने को तैयार है,
तो ऐसा ही तुम्हारा स्वभाव है।७१।

ऊर्ध्व* : आकाश; अधम* : पाताल

तुमने यज्ञ भोजन भाग का आनंद लेने
वालों के मध्य अपना स्थान है लिया बना।
जिसके समक्ष नगण्य है सुमेरु पर्वत के
उच्च हिरण्मय* श्रृंगों* की प्रधानता।७२।

हिरण्मय* : सुर्वणमयी; श्रृंग* : शिखर

सारी कठोरता तुमने अपने
समा रखी है स्थावर ही रूप में।
परन्तु आराधना संग तुम्हारी यह वपु भक्ति में

नम्र हो सभी साधु कृत्यों हेतु समर्पित है।७३।

किस कार्य हेतु हमारा यहाँ आगमन हुआ है,
तब सुनो, यह कदाचित तुम्हारे लिए ही है।
हम तो यहाँ श्रेयस कार्यों में मात्र
उपदेश देने में सहभागी हैं।७४।

वह जो अर्धचन्द्र सहित 'ईश्वर'
शब्द द्वारा पुकारा है जाता।
अणिमा* आदि गुणों से सुशोभित है
और जो अन्य नरों पर लागू नहीं होता।७५।

(*अष्ट-सिद्धि : अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्वं एवं वशित्वं)

आत्मा में परस्पर सामर्थ्य बढ़ाते हुए
विभिन्न पृथ्वी आदि जिस शम्भु द्वारा ।
अष्ट-मूर्तियों द्वारा विश्व को धारण किया जाता
व जैसे अश्वों द्वारा पथ पर वाहन खींचा जाता।७६।

जिसको योगी खोजते हैं
और देह-अभ्यान्तर* में वास करते हैं।
तथा मनीषी घोषणा करते कि निवास उसका
पुनर्जन्म भय से स्वतंत्र है करता।७७।

अभ्यान्तर* : हृदय

विश्व के कर्मों के साक्षी और
इच्छित फलों का वरदान देने वाले।
उस शम्भु ने तुम्हारी दुहिता को
माँगने का कार्य सौंपा है हमें।७८।

उस शम्भु की वाणी * हेतु ही हम
तुम्हारी सुता के योग की करते इच्छा।
निश्चय ही पिता कन्या को अच्छे वर,
को सौंप कर नहीं पछताता।७९।

वाणी * : वचन

स्थावर-जंगम* प्राणियों द्वारा उस उमा को
माता रूप में कल्पना करने दो तुम।
क्योंकि जगत-पिता ईश
निश्चय ही है शिव।८०।

स्थावर-जंगम* : चराचर

तुम देवताओं को बाद इसके
नीलकण्ठ को प्रणाम करके।
अपने मुकुट-मणियों की रश्मियों द्वारा इस
पार्वती के चरणों को रंजित दो करने।८१।

उमा वधू है, आप विवाह में दाता हो उसके
और हम इसके लिए याचक हैं, शम्भु है वर।
विधि पर्याप्त होगी निश्चित ही
कुल-उन्नयन हेतु तुम्हारी यह।८२।

तुम बन जाओ निज सुता के सम्बन्ध-विधि द्वारा
विश्व-पिता के भी तात, जो स्तुत्य है सब द्वारा।
पर वह किसी की उपासना नहीं करता,
अपितु सब उसकी करते हैं वंदना।८३।

जब देवर्षि* यह बोल रहे थे,
पार्श्व* बैठी पार्वती पिता के।
लज्जावश लीला कमल-पत्रों को
अधोमुखी होकर लगी गिनने।८४।

(* ऋषियों की सात श्रेणियाँ: ऋषि, महर्षि, परमर्षि, देवर्षि, ब्रह्मर्षि, कंदर्शी एवं श्रुतर्षि); पार्श्व* : साथ

यद्यपि सम्पूर्ण हो गई थी उसकी कामना,
पर्वत ने मेना के मुख की ओर देखा।
कन्यादान के विषय कुटुम्बी व गृहिणियों के
नेत्र-संकेतों द्वारा प्रायः निर्देशित हैं होते।८५।

मेना ने भी पति के अति-इच्छित
सब कार्य को लिया स्वीकार कर।
भर्तारों के अभिलाषित विषयों में हैं रहती
पतिव्रता नारियाँ अव्यभिचारिणी।८६।

हिमवान ने इस मुनिव्रत के हेतु उत्तर
बुद्धि द्वारा न्याय ऐसा विचार कर।
मंगल-अलंकृत सुता को
लिया अपने हस्त।८७।

आओ मेरी प्रिय वत्सा, तुम विश्वात्मा
शिव हेतु परिकल्पित हो भिक्षा।
मुनि इसके अर्थी हैं, प्राप्त हो गया
मुझे यज्ञ-फल गृहस्थी का।८८।

तनया* को ऐसा कहकर,
महीधर ने ऋषियों को किया वचन।
यह त्रिलोचन-वधू आप सबको
करती है यहाँ नमन।८९।

तनया* : पुत्री

उनकी इच्छा का आदर करने के कारण,
ऋषियों ने गिरिराज वचनों की प्रशंसा करके।
अम्बिका को उन्नति का आशीर्वाद दिऐं,
जो जल्द ही फलीभूत होने वाले थे।९०।

अरुन्धती ने लिया ले
लज्जामान उमा को अंक में।
जिसके नीचे गिर गए थे प्रणाम करते समय
शीघ्रता से झुक कर जाम्बूनद सुवर्ण-कुण्डल।९१।

और तब वर के गुणों का करते हुए गुणगान
जिसकी पूर्व में कोई और वधू थी अन्य न।
उसने उमा-माता को प्रसन्न किया, जिसका मुख
दुहिता-स्नेह कारण था विकल, अश्रुपूर्ण।९२।

तत्क्षण हिमवत द्वारा पूछने पर
वृक्ष-वल्कल* वसन* किए हुए धारण।
हर-बन्धु उन साधुओं ने विवाह-तिथि की पुष्टि की यह,
कि तीन दिवस पश्चात होगा, एवं किया प्रस्थान तब।९३।

वल्कल* : छाल; वसन* : चीर

हिमालय से विदाई लेकर वे पुनः गए शिव के स्थल
निवेदन किया कि उनका प्रयोजन हो है गया सिद्ध।
उसके बाद शिव द्वारा विदाई देने पर
वे आकाश-मार्ग को हुए उद्यत।९४।

अद्रिसुता समागम-उत्सुक पशुपति
ने भी, वे दिन बिताए कठिनता से बड़ी।
इन्द्रिय-परतंत्रक भावों से न होगा विचलित कौन अन्य
जब ये काम भाव स्पर्श करते हैं विभूति को भी ?९५।

कुमार सम्भव

सप्तम सर्ग : उमा परिणयो

औषधिपति* के वृद्धि* पक्ष में जामित्र* के
सप्तम ग्रह के शुभ गुणों की सत्यता गणना करके।
विवाह-तिथि निश्चय पश्चात् बन्धुओं संग सुता विवाह-
दीक्षा पूर्व की विधियाँ पालन की हिमवत ने।१।

औषधिपति* : चन्द्र; वृद्धि* : शुक्ल; जामित्र : ज्योतिष-चक्र

विवाह-अनुष्ठान* हेतु योग्य कौतुक में
अनुराग से पुरन्ध्री* वर्ग व्यग्र था हर निवास में ।
और हिमवत का बाह्य पुर और अन्तःपुर
प्रतीत हो रहा था एक कुल के रूप में।२।

अनुष्ठान* : संविधान; पुरन्ध्री* :गृहिणी ; पुर : नगर

महापथ सन्तानक* पुष्पों से छितरित,
चीनांशुक निर्मित उसकी मालाऐं-ध्वज।
काञ्चन* तोरण* प्रभा से हो रहा उज्वलित

ऐसे आभासित जैसे स्वर्ग-स्थानान्तरित कृत।३।

सन्तानक* : कल्प-तरु; काञ्चन : सुवर्ण; तोरण :द्वार

यद्यपि उनके अनेक पुत्र थे, मात्र उमा ही सत्य थी
जैसे कोई मृत्यु से जीवित हो खड़ा, जैसे एक चिरकाल बाद दे दिखाई।
अपने अभिभावकों की विशेष प्राणभूत* बन गई,
अब पाणिग्रह करने जा रही थी।४।

प्राणभूत* : स्नेहपात्र

मण्डन उद्घोषणा के साथ ही वह आशीर्वादित
इस अंक* से उस अंक जाने लगी व मण्डन* से आनन्दित।
यद्यपि गिरि के कुल के विभिन्न संबंधियों का
स्नेह मात्र भी उसमें ही था केंद्रित।५।

अंक* : गोद; मण्डन* : आभूषण

इसके बाद सूर्योदय पश्चात मैत्र* मुहूर्त में शशि जब
योग में चला जाता है उत्तर फल्गुनी नक्षत्र संग।
बन्धु-पत्नियाँ अपने पति एवं पुत्रों सहित
उसके शरीर पर लगाती हैं प्रसाधन।६।

मैत्र* :मित्र देवता

गौरी के वस्त्र तेल से भीग जाते और सुंदरता उसकी
सफेद सरसों-बीज एवं दूब घास के तृण से और भी बढ़ जाती।
नाभि से ऊपर ही कपड़ा पहना जाता व वह हाथ में एक बाण उठाती,
उसकी अंग-रमणीयता से वस्त्र-सुंदरता और बढ़ जाती।७।

और वह बाला विवाह पूर्व दीक्षा विधि पर
बाण के सम्पर्क में आकर ऐसे प्रकाशमान हो थी रही।
मानो कृष्ण-पक्ष पश्चात ज्वलित सूर्य किरणों से
प्रेरित शशांक रेखा है चमकती।८।

नारियाँ उसके अंग-तेल को सुगन्धित लोध्र चूर्ण से उतार
और अंगों को केसर चूर्ण से मसलकर, कुछ पोंछने पश्चात।
उसको अभिषेक* योग्य वस्त्र पहनाकर,
स्नान हेतु ले जाती चतुर्स्तम्भ-गृह के स्नानागार।९।

अभिषेक* : स्नान

इसके शिलातल* वैदूर्य* जड़े हुए और जड़ी
मोतियों की अलंकारिक पंक्तियों से हैं बहुरंगी।
इसमें रखे अष्टधातु-कलश जल से वे पार्वती को,
जब तूर्यों का मधुर संगीत बज रहा, स्नान कराती।१०।

शिलातल* : फर्श; वैदूर्य* : नीलमणि

मंगल-स्नान से विशुद्धगात्री और वर समीप जाने
योग्य वस्त्र पहने, वह वसुधा भाँति थी कान्तिमान।
जिसने अभिषेक किया है वर्षा जल से
और प्रफुल्ल काश पुष्प किए हैं धारण।११।

और उस स्थान से पतिव्रता स्त्रियों द्वारा वह
अंक में भरकर लाई गई विवाह-वेदी मध्य।
जो चतुष्कोणीय मण्डप था और
जिसमें बनाया गया था एक आसन।१२।

उस तन्वी* को पूर्व ओर मुख कराके
बैठाकर, वे नारियाँ उसके सम्मुख बैठ गई।
उसकी यथाभूत* शोभा द्वारा उनके नेत्र-आकर्षित होने से
कुछ विलम्ब हो गया, यद्यपि प्रसाधन-सामग्री संग ही थी रखी।१३।

यथाभूत* : वास्तविक; तन्वी* : पार्वती

सुगंधित-धूम्र से आर्द्र केश सुखाकर एक प्रसाधिका ने
उसके केशों के अंत में बनाया एक जूड़ा सुंदर।
जिसके मध्य दूर्वा घास में पीत मधूक
पुष्प-माला लगाई, जिससे बन सके एक बन्ध रम्य।१४।

उन्होंने लगाया उसकी देह पर शुक्ल-अगरु लेप
और इस पर गोरचना* से बनाए अलंकृत चित्र।
अतएव वह त्रि-स्रोत गंगा कान्ति को भी मात दे रही थी,
जिसके रेतीले तीरों पर चक्रवाक पक्षियों के चिन्ह हैं अंकित।१५।

गोरचना* : पीत वर्ण

पद्म में तल्लीन द्विरेफ* अथवा चन्द्र को ढाँपती
मेघ लेखा से भी बढ़कर अलका सजे उसके श्रीमुख ने।
उसकी सुंदरता समकक्षता की बात तो छोड़ ही दो,
तुलना हेतु भी कोई अवसर न छोड़ा।१६।

द्विरेफ* : भ्रमर

उसके कर्ण अर्पित* उत्कृष्ट-वर्ण यव* अंकुर,
उसके लोध्र चूर्ण से रुक्ष और गोरचना से चित्रित।
अत्यंत गोरे कपोलों पर लटक रहे हैं
जो दर्शक-चक्षुओं को बाँध लेते हैं।१७।

अर्पित* : पहनाए; यव :जौं

सुशंस्लिष्ट* अवयवों वाली पार्वती के
अधरोष्ठ को एक मध्य रेखा सम-विभक्त करती है,
जो किंचित मधु-लेपन से अति-विशिष्ट रंग के हो गए हैं।
और जो उनके स्पंदन से फलित निकट लावण्यता से
अति-शोभनीयता प्रदान कर रहे हैं।१८।

सुशंस्लिष्ट* : सुडौल, सममित

चरणों को लाक्षारस से रंजित करने जब सखी
परिहास पूर्व उससे कहती - अपने पति के शीर्ष की।
चन्द्र कला को यूँ मन में इससे स्पर्श करो,
तो वह निर्वचन* उसे माला द्वारा पीट देती।१९।

निर्वचन* : बिना बोले

उसकी प्रसाधिकाऐं उसके नयनों का निरीक्षण
करती, कि वे सुजात उत्पल*-पत्रों सम हैं शोभित।
कृष्ण-अञ्जन उसके चक्षुओं में इसलिए नहीं डालती कि
इससे उसकी सुंदरता बढ़ेगी, अपितु यह कि है मांगलिक।२०।

उत्पल* : कमल

जब सुवर्ण आभरण उसको पहनाए जाने लगे,
वह लता से फूटते नाना-वर्णी कुसुम सम दमकने लगी।
जैसे रात्रि में नक्षत्र उदय होते हैं, और जैसे एक नदी
उसमें लीयमान* चक्रवाक विहँगों द्वारा है चमकती।२१।

लीयमान* : आश्रय लिए

निश्छल नेत्रों से अपनी देह की शोभा
देखकर, वह व्यग्र थी हर प्राप्ति को।
निश्चय ही स्त्रियाँ के वेशों का फल अपने
पतियों द्वारा निहार लिया जाना है होता।२२।

तत्पश्चात माता ने स्वच्छ-आर्द्र हरीतिका* व लाल-संखिये का मिश्रण
तर्जनी उँगलियों में लेकर, मंगलार्थ उसका मुख उठाकर,
जिसके कर्णों से दो चमकती बालियाँ लटक रही थी,
किसी भाँति विवाह-दीक्षा हेतु उसके माथे पर तिलक लगाया।
दुहिता उमा के स्तनों के प्रवृद्ध उभार को माता मेना ने
प्रथम बार मन में अनुभव किया।२३, २४।

हरीतिका* : हल्दी

खुशी से आकुल अश्रुमयी दृष्टि लिए उसने
विवाह का ऊर्णामय* सूत्र उसके पाणि* में बाँधा।
जो भूल से कहीं अन्य स्थान पर रख दिया गया था परन्तु
धात्री* ने अपनी उँगलियों से उचित स्थान पर धकेला।२५।

ऊर्णामय* : ऊनी; पाणि* : कर; धात्री : धाय

वह नव-रेशम के शुभ्र वस्त्र पहनकर और एक
नव दर्पण हाथ में लेकर रही थी बहुत ही सुंदर।
जैसे क्षीर सागर का तट फेन-पुञ्ज से
या शरत रात्रि का चन्द्रमा पूर्ण।२६।

ऐसे अवसरों में दक्ष माता ने उस गौरी को कुल-प्रतिष्ठा
अवलंबन गृह-देवों को प्रणाम करके अर्चना हेतु कहा।
और उसी क्रम में पतिव्रता सतियों के
चरण स्पर्श करने को।२७।

उस नम्र* उमा को ऊपर उठाते उन सतियों ने
'पति के अखंडित प्रेम को प्राप्त करो', ऐसा कहा।

उसके द्वारा उस शिव का अर्ध-शरीर साँझा करने
पश्चात तो बंधुजन-आशीर्वाद भी छूट जाऐंगे पीछे।२८।

नम्र* : प्रणाम करती

अति-उत्सुक और विनीत कार्यों में दक्ष अद्रिनाथ
उसके (पुत्री) हेतु शेष कार्य उचित रूप से कर निपटा।
साधुजन एवं बंधुजनों की सभा में
वृषांक* आगमन की प्रतीक्षा करने लगा।२९।

वृषांक* : अंक में वृष (बैल) जिसके अर्थात शिव

कुबेर नगरी कैलाश में दैवी माताओं द्वारा
आदर सहित हर के पूर्व विवाह भाँति।
अनुरूप प्रसाधन सामग्री पुर-संहारक
तब तक शिव समक्ष प्रस्तुत की गई।३०।

तब ईश्वर द्वारा माताओं(*) के आदर हेतु उन
शुभ प्रसाधन संपत को मात्र किया गया स्पर्श।
उस विभु* का स्वाभाविक वेश तो भस्म-कपाल आदि
ही हैं, यह रूपांतर तो मात्र वर -रूप में हेतु है सज्ज ।३१।

(*सात दैवी माताऐं : ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, माहेन्द्री, वाराही एवं चामुण्डा)
विभु* : शिव

भस्म ही उसकी वपु का शुभ्र-गंध है अनुलेप,
कपाल ही उसका निर्मल शेखर* श्री*।
गज-चर्म ही उसके रेशमी दुकूल* हैं, जिसकी
किनारियों पर हैं गोरचना से चित्र अंकित भी।३२।

शेखर* शीश; श्री : आभूषण; दुकूल* : वस्त्र

मस्तक पर स्थित तृतीय नेत्र उसका,
जिसकी कनीनिका* एक तारक सम दमकती है।
उसके निकट ही एक तरफ हरिताल* से
तिलक करने हेतु स्थान निश्चित है।३३।

कनीनिका* : पुतली; हरिताल* : शंखिया, हल्दी

भुजंग-ईश्वर के शरीर का आभरणों से मात्र
उपयुक्त स्थालों पर किया गया रूपांतर।
उनके फणों की रत्न-शोभा तो
वैसे ही है, जैसे ही थी पूर्ववत।३४।

भुजंग-ईश्वर* : शिव

हर-चूड़ पर मणि रखने का क्या उपयोग है
जिसकी मौलि अभिन्न है नित्य चन्द्र से।
जिसकी मरीचि* दिवस में भी चमकती है जो मात्र बाल
होने के कारण भी प्रतीतमान नहीं एक लाँछन* रूप में।३५।

मरीचि* : काँति; बाल : अल्प, तनु; लाँछन* : अदृश्यमान कलंक

जो सामर्थ्य से नेपथ्य में विधि से
इन विचित्र प्रभवों* का है विधाता।
उसने समीप खड़े गण द्वारा लाई गई एक खड्ग में
वीर पुरुष भाँति अपना संक्रान्त प्रतिबिम्ब देखा।३६।

प्रभव : प्रसिद्ध वेश

व्याघ-चर्म पहने नन्दी-भुजा का अवलम्बन लेकर
कैलाश ओर देखते हुए देव उसकी पृष्ठ पर हुआ आरूढ़।
उस गोपति* ने भी भक्ति सहित अपनी विशाल पृष्ठ को
संक्षिप्त संकुचा कर लिया प्रस्थान।३७।

गोपति* : वृषभ

उस देव का अनुसरण करते हुए स्व-वाहनों के
चलने से, रहे थे माताओं के कर्ण-कुण्डल क्षोभित* हो।
उन्होंने आकाश को पद्मों का कालीन सा बना दिया जिसकी
चक्रित रेणु*-प्रभामंडल से गया था उनका मुख गोरा हो।३८।

क्षोभित* : आंदोलित; रेणु : परागकण

उन कनक प्रभाव वालियों के पीछे महाकाली
सफेद कपाल-आभरण पहने ऐसे रही थी चमक।
जैसे नील पयोदरों* में सारस-पंक्ति जो दूर से ही

अग्रदूत दामिनी सम रही थी दमक।३९।

पयोदर* : मेघ

तदुपरांत शूलभृत* के पुर के अग्रसर गणों द्वारा
मंगल वाद्य ध्वनि किया गया उदीरित *।
विमानों के शृंग* से आव्हान करते कि
यह सुरों के लिए है सेवा-अवसर।४०।

शूलभृत* : पिनाकी, शिव; उदीरित * :उद्घोषित; शृंग* : शिखरिखा

सहस्ररश्मि* ने उस हर हेतु त्वष्ट्रा* द्वारा एक नव-
आतपत्र* बनवाई और रेशमी-वस्त्र छत्र से उस।
उत्तम अंग में गंगा धारण किए हुए दूर से वह हर
ऐसे प्रतीतमान मानो उसके मौलि पर रही हो गिर।४१।

सहस्ररश्मि : सूर्य; त्वष्ट्रा : विश्वकर्मा; आतपत्र* : छत्र, छतरी

गंगा-यमुना भी अपनी मूर्त में
चँवर लेकर देव की सेवा कर रहती थी।
मानो सागर-विलोम दिशा कारण उनके रूप परिवर्तित
और वे हंस-उड़ान भाँति लक्षित हो रही थी।४२।

आदि देव विधाता एवं वक्षस्थल पर श्रीवत्स लिए
विष्णु साक्षात् आए उस महादेव के निकट।
और 'जय हो' कहकर इस ईश्वर की महिमा बढ़ायी
जैसे यज्ञ में घृत-आहूति देने से अग्नि वर्धित।४३।

वह एक ही मूर्ति है जो तीन ब्रह्म, विष्णु व महेश में
विभाजित है, यह प्रथम वरीयता-भाव सामान्य है।
कभी विष्णु हर से प्रथम है कभी हर विष्णु से, कभी ब्रह्म
उन दोनों से और कभी वे सृष्टिजनक ब्रह्म से भी वरिष्ठ हैं।४५।

उस नंदी ने शतपत्र*-योनि ब्रह्म को मूर्धा*
हिलाकर सम्मान दिया, हरि को वाणी द्वारा।
इंद्र को मंद-मुस्कान द्वारा और शेष सुरों को
प्रधानता* अनुसार मात्र एक दृष्टिपात द्वारा।४६।

शतपत्र*: शतकमल; मूर्धा* : शीर्ष; प्रधानता* :वरिष्ठता

प्रथम सप्तर्षियों द्वारा उसके हेतु मंगलकामना कही गई,
'तुम्हारी जय हो' और उसने मुस्कान संग कहा उनको।
इस विवाह-यज्ञ में जो यहाँ शुरू हो गया है, तुम पूर्व से ही
मेरे द्वारा कार्यवाहक पुरोहित रूप में नियुक्त हो।४७।

तामसिक विकारों से स्तुति अलंघ्य
ताराधिपखण्डधारी* एवं त्रिपुर-संहारक की।
दैवी-वीणा प्रवीण गन्धर्व विश्वासु के नेतृत्व में
गाते हुए मार्ग के निकट से गुजरें तभी।४८।

ताराधिपखण्डधारी* : चंद्रशेखर, शिव

वह नंदी वृषभ प्रसन्नता से सुवर्ण लघु-घंटियाँ बजाते हुए
व अपने शृंग पुनः-२ हिलाते हुए मेघों को चीरता हुआ।
आकाश-विचरण करता ऐसे प्रतीत हो रहा था कि जैसे
पर्वत-सीमा टकराने से वह पंक-आवृत कर है लिया।४९।

नगेन्द्र* द्वारा रक्षित नगर में, जिसने अभी तक शत्रु-आक्रमण
अनुभव नहीं किया था, वह नंदी मुहूर्त भर में ही पहुँच गया।
औषधिपुरम पर हर की तृतीय नेत्र दृष्टि इस प्रकार पड़ी
मानो आगे सुवर्ण सूत्र खिंचे रहे हैं जा।५०।

नगेन्द्र* : हिमालय

घननील* सम कण्ठ वाला,
स्व-बाण चिन्हित मार्ग से उतरते हुआ।
पुर निवासियों द्वारा उन्मुख दृष्टि से कुतूहलता से
देखा जा रहा वह देव, भूमि सतह पर आसन्न हुआ।५१।

घननील* : नीला मेघ

उस शिव-आगमन से हृष्ट* गिरि चक्रवर्ती*
ऋद्धिमान* बंधुजनों संग गज पर आरूढ़ होकर।
स्त्री-नितम्ब सम विकसित कुसुम वाले प्रफुल्ल-वृक्ष
आच्छादित मार्ग से गया हर के स्वागत।५२।

हृष्ट* : प्रसन्न; चक्रवर्ती : हिमवान; ऋद्धिमान : समृद्ध

दूर से पहुँचने की हड़बड़ी में देव एवं
हिमवानों के दो वर्ग पुर द्वार पर मिलें।
जैसे दूरगामी घोष* वाली दो भिन्न धाराऐं
एक ही सेतु से निकलती हैं।५३।

घोष* : शोरगुल

त्रिलोक द्वारा वन्दनीय हर द्वारा प्रणाम
किए जाने पर, भूमिधर* संकोच से गया शरमा।
क्योंकि नहीं जानता था कि उस हर की महिमा से
उसका सिर पूर्व से हुआ है बहुत झुका।५४।

भूमिधर* : हिमवान

प्रीति सहित चमकते श्रीमुख वाले
हिमवान ने जामाता का मार्ग किया नेतृत्व।
और उसे समृद्ध मंदिर* में प्रवेश कराया
जानुओं* तक पुष्प छितरित थे जिसके आपण*।५५।

मंदिर* : नगर; आपण* : बाज़ार; जानु* : घुटना

उसी मुहूर्त प्रासाद-पंक्तियों में पुर-सुंदरियाँ
लालसा से हेतु ईशान* के उत्तम सन्दर्शन*।
सभी कार्य-व्यापार छोड़कर
उधर ही हुई उन्मुख।५६।

ईशान* : शिव; सन्दर्शन* : झलक

गवाक्ष* से दर्शन करने की शीघ्रता में
किसी एक रमणी ने खुले केशों को अपने।
बाँधने को बिल्कुल भी नहीं सोचा जो
माला* से खुले थे और लटक रहे।५७।

गवाक्ष* : खिड़की; माला* : जूड़े

किसी स्त्री ने प्रसाधिका द्वारा पकड़े
आर्द्र-अलक्तक लगे अग्र पाँव को खींच लिया।
और अपनी गति* सुंदरता त्याग कर जालीदार
खिड़की तक पदों द्वारा लाक्षारस-चिन्ह दिए बना।५८।

गति : कदम

एक अन्य नारी दक्षिण* लोचन में अञ्जन लगा
कर वाम* नेत्र को इसके बिना दिया छोड़।
तभी हाथ में श्लाका* पकड़े वह अति-
शीघ्रता से वातायन* के गई पास।५९।

दक्षिण* : दायीं; वाम* : बायीं; श्लाका* : कूची; वातायन* : खिड़की

एक अन्य वनिता जालांतर* में दृष्टि-पात हेतु जल्दी में
वस्त्र-ग्रंथि* बाँधना भूल गई; किन्तु खड़ी होकर।
अंतर्वस्त्र को हाथ में पकड़े रही जिसके चमकते
सुवर्ण आभरण* नाभि में रहे थे घुस।६०।

जालांतर* : खिड़की; वस्त्र-ग्रंथि* : नींवी, नाड़ा; आभरण* : कंगन, आदि

एक अन्य नारी जो अति-तत्परता से उठी,
उसके अर्द्ध-गुँथे* मेखला-बंद से हर भ्रमित पग पर।
पिरोए मणियें* नीचे गिर रहे थे; बाद में उसका सूत्र ही
शेष रह गया जो बंधा हुआ था अंगुष्ठ-पद।६१।

अर्द्ध-गुँथे* : बाँधे; मणियें*: रत्न

अति कुतूहलमयी अन्तर तक मद्य-गंध व्यापित
व भ्रमर सम-विचलित* अक्षी वाली वनिताओं से।
गवाक्ष-जालियाँ भरी हुई थी, ऐसे दिख रही मानो
वे कमलपत्र आभरण से सुसज्जित हैं।६२।

सम-विचलित* : मचलती

तभी उस अवसर पर इंदुमौलि* ने ध्वज* आकुल*
उच्च सुसज्जित तोरण* राजपथ में आगमन किया।
इससे प्रासाद-शिखर दिवस में भी द्विभान्ति कांतिमान हो रहे थे
क्योंकि उन्होंने शशि-ज्योत्सना से भी अभिषेक* था किया।६३।

इंदुमौलि : शिव; ध्वज : पताका; आकुल : परिपूरित; अभिषेक : स्नान

ईश्वर पर एक दृष्टिपात कर नारियों के नयन अति-तृष्णा से
देख रहे थे और वे विचार-अक्षम थी किसी भी अन्य विषय*।
इन शेष इन्द्रियों के वृत्तिरस सम्पूर्णतया
अतएव चक्षुओं में ही गए थे प्रवेश कर।६४।

विषय* : इन्द्रि

पेलव* होते हुए भी अपर्णा ने उसके
हेतु दुष्कर तप करके उचित ही किया।
वह नारी धन्य है जिसको मिले उसकी सेवा*-सौभाग्य, फिर
उसकी तो क्या कहे जो पा सके उसकी अंक-शय्या।६५।

पेलव* : कोमल; सेवा* : दासी बनने का

यदि इस स्पृहणीय* मिथुन*
का परस्पर मिलन न होता।
तो प्रजापति ब्रह्म द्वारा दोनों का यह
रूप-विधान* का यत्न विफल हो जाता।६६।

स्पृहणीय* :ईर्ष्य; मिथुन* : जोड़ी; रूप-विधान : सौंदर्य-निर्माण

निश्चित ही कुसुमायुध* देह इस हर द्वारा न हुई थी दग्ध
देव को देखकर क्रोध आरूढ़ हो गया उसपर।
मैं सोचता हूँ कि यह लज्जा से था कि
काम ने स्वयं ही कर दी थी देह त्यक्त।६७।

कुसुमायुध* : काम

हे सखी*, सौभाग्य से मनोरथ-प्रार्थित
ईश्वर संग इस संबंध को करके प्राप्त।
पूर्व से ही क्षिति*-धारण से उन्नत मस्तक
हिमालय का मूर्ध्ना* हो जाएगा उन्नततर।६८।

सखी* : आलि; क्षिति* : पृथ्वी; मूर्ध्ना* : शीर्ष

इस प्रकार ओषधिपुरम-विलासिनियों* की मधुर कथा
कर्णों से सुनते हुए त्रिनेत्र ने हिमालय-आवास किया आगमन।
जहाँ मुष्टियों द्वारा फैंकी गई लाजा*
भुजबंदों द्वारा हो रही थी चूर्णित।६९।

विलासिनी* : स्त्री; लाजा* : उबाले सूखे चावल, खील

वहाँ अच्युत* द्वारा दत्त हस्त-अवलम्बन से वह वृषभ* से
इस भाँति उतरा मानो शरत-घन से निकलता दीधितिमान*।
उसने हिमालय* के अन्तर प्रासाद में प्रवेश किया
जहाँ पूर्व से ही कमलासन* थे विद्यमान।७०।

अच्युत* : विष्णु; वृषभ* : नंदी; घन* : मेघ; दीधितिमान* :सूर्य; कमलासन* :ब्रह्म

और अनन्तर इंद्र की प्रमुखता में देव,
सनकादिक परमर्षि व उनसे पूर्व सप्तर्षि, शिव-गण।
गिरिराज आलय में पधारे जैसे उत्तम अर्थ*
प्रशस्त* आरम्भ का करते हैं अनुसरण।७१।

अर्थ* : प्रयोजन; प्रशस्त* : प्रकृष्ट, अमोघ

तदुपरांत ईश्वर ने वहाँ आसन ग्रहण कर
पूजा-भेंट स्वीकृत की नगपति द्वारा सब।
रत्न, मधु, मधुपर्क, गव्य* व दो नव-वस्त्रों की,
पवित्र मंत्र किए जा रहे थे उद्गीत जब।७२।

गव्य* : मक्खन-दधि

रेशमी-वस्त्रों में वह हर महल के विनीत-दक्ष
कंचुकों* द्वारा वधू समीप इस प्रकार गया लाया।
ज्वार समीपता में नव-चन्द्र किरणों द्वारा सागर का
श्वेत* फेन व जल जैसे तट पर लाया है जाता।७३।

कंचुक* : रक्षक; श्वेत* : स्फुट

शरत-ऋतु की चन्द्र-कान्ति सम
लोक के प्रवृद्ध* आनन* कुमारी पार्वती के उस।
प्रफुल्लित कमलनयनों के अदभुत सृजन देखकर
शिव-चित्त भी मृदु सलिल सम हो गया प्रसन्न।७४।

प्रवृद्ध* : अति-वर्धित; आनन : मुख

उन दोनों वर-वधू के कातर* नयन यदि
किसी व्यवस्था* से कुछ क्षण हेतु मिल जाते हैं।
तो तत्क्षण लज्जा* भाव से वापस खींच लिए जाते हैं,
परस्पर लोचन मिलाने की अति-उत्सुकता है।७५।

कातर : अधीर; व्यवस्था* : भाँति; लज्जा* : संकोच

शैलपति गुरु द्वारा पकड़ाने पर अष्टमूर्ति शिव ने
उस पार्वती के ताम्र* उँगलियों वाला पाणि*-ग्रहण किया।
जैसे कि यह स्मर* का प्रथम अंकुर था जो गूढ़* रूप से
भय कारण उमा के तन में छिपा था हुआ।७६।

ताम्र* : लाल; स्मर* : काम; गूढ़* : गुप्त; पाणि* : हस्त

उन दोनों के हाथ मिलने पर उमा की
देह के रोम उद्गम से खड़े हो गए जबकि।
पुंगवकेतु* की उँगलियाँ स्वेद से तर-बतर हो गई,
मनोभव* वृत्ति दोनों में समान रूप से विभक्त थी।७७।

पुंगवकेतु* : शिव; मनोभव* काम

जब पाणिग्रहण* समय इन उमा-महेश के सान्निध्य से
अन्य सामान्य वधू-वर की शोभा जाती है अत्यंत बढ़।
तो उन उमा-महेश्वर मिथुन* विवाह में बढ़ी श्री की क्या
कहें, जब एक-दूजे के सम्पर्क में लाए गए हैं स्वयं।७८।

पाणिग्रहण* : विवाह; मिथुन* : युग्म; श्री : कान्ति

कृश होती उन्नत-ज्वाला* की प्रदक्षिणा करता यह युग्म
जो अब एक हो गया था, वर्तमान में ऐसे हुआ कांतिमान।
जैसे मेरु-पर्वत परिसर की परिक्रमा करते दिवस-रात्रि
चमकते हैं परस्पर गूढ़-मिलन के बाद।७९।

उन्नत-ज्वाला* : प्रज्वलित अग्नि

अन्योन्य* सम्पर्क रोमांच से नेत्र मींचे उस दम्पति को
पुरोधा* ने विवाह हेतु अग्नि-गिर्द तीन फेरे लगवाने पश्चात।
वधू से उस दीप्त अर्चि* में लाजों की
समिधा की आहूति करवाई विसर्ग।८०।

अन्योन्य* : परस्पर; पुरोधा* : पुरोहित; अर्चि* : अग्नि

उस वधू ने गुरु उपदेश से इष्ट* गन्ध-तर्पण हेतु
लाजा-धूम्र अञ्जलि में लेने हेतु अपने मुख को झुकाया।
वह धूम्र उसके कपोलों को छूकर एक मुहूर्त हेतु
सर्पिणी शिखा कर्णोत्पल सा था लग रहा।८१।

इष्ट* : शुभ

इस धूम्र ग्रहण करने की धार्मिक प्रथा से व
काले-अञ्जन उच्छ्वास* से और नयन प्रवेश से।
वधू मुख व गण्ड* गड्ढे किञ्चित आर्द्र एवं अरुण* हुए
और कर्णों के यवांकुर आभूषण मुरझा गए।८२।

उच्छ्वास : सूंघने; गण्ड * : कपोल; अरुण* : लाल

द्विज ने कहा -प्रिय वत्सा, तुम्हारे
विवाह-कर्म की साक्षी है वह्नि* यह।
अपने विचार तक त्यागकर भर्ता* शिव
संग निर्वाह करो धर्म आचरण।८३।

वह्नि* : अग्नि; भर्ता* : पति

भवानी द्वारा निज कर्ण आलोचनान्त* तक कर्षण
अर्थात सुने गए अति-ध्यान से, गुरु के वे वचन ।
जैसे उष्ण* काल की अत्यधिक उल्बण* तपित
पृथ्वी माहेन्द्र का करती है प्रथम जल ग्रहण।८४।

आलोचनान्त* : नेत्रान्त; उष्ण* : ग्रीष्म; उल्बण :अत्यधिक

प्रियदर्शन शाश्वत* पति द्वारा ध्रुव तारक
दर्शन हेतु आदेश से उसने सिर अपना।
उठाते हुए कण्ठ में लज्जा होने के कारण
बड़ी कठिनता से 'देख लिया', ऐसा कहा।८५।

शाश्वत* : ध्रुव

इस प्रकार विधि-संस्कारों में निपुण
पुरोहित द्वारा यह पाणि-ग्रहण सम्पन्न हुआ।
प्रजाओं के दो अभिभावकों* ने पद्मासन-स्थित
पितामह* को झुककर नमन किया।८६।

अभिभावक* : उमा-महेश्वर; पितामह* :ब्रह्म

विधात्रा* ब्रह्म ने वधू का स्वागत करते हुए
आशीर्वाद दिया, 'सौभाग्यवती भव, वीरप्रसवा* होवों'।
वाचस्पति होते हुए भी वह सोच न सकें कि अष्टमूर्ति
शिव के विषय में क्या आशीर्वाद दिया जाए?८७।

विधात्रा* : विधाता; वीरप्रसवा* :वीर पुत्र माता

उस वर-वधू ने नमस्कार पश्चात क्लृप्त*
पुष्प-सज्जित चतुष्कोणीय वेदी में प्रवेश कर।
कनक* आसन ग्रहण करके लौकिक व्यवहार एवं ऐषणीय
आर्द्र अक्षत चावलों का रोपण मस्तक पर किया अनुभव।८८।

क्लृप्त* : विरचित; कनक* : सुवर्ण

लक्ष्मी ने आकृष्ट* मुक्ताफल* जाल को उनके ऊपर
पकड़ा, जो लग्न* जल-बिन्दुओं से शोभित आतपत्र* था।
जिसकी दीर्घ* नाल का ही छतरी-दण्ड
रूप में प्रयोग हो रहा था।८९।

आकृष्ट* : आहूत, निमंत्रित; मुक्ताफल* : मोती; लग्न* : जमे हुए; आतपत्र* : छतरी; दीर्घ* :लम्बी

सरस्वती ने उस मिथुन* की
द्विविधि प्रकार वाङ्गमय से प्रंशसा की।
वर की वरणीय संस्कार-पूत* वाणी से
और सुबोध भाषा रचना से वधू की।९०।

मिथुन* : युग्म ; संस्कार-पूत* : परिष्कृत शुद्ध व्याकरण, शास्त्र-व्युतपत्य

उन दोनों ने एक मुहूर्त एक नाटक के प्रथम खेल को देखा जिसमें
विभिन्न वृत्ति-भेद मुख्य भाग से भली-भाँति समन्वित किए गए थे।
विभिन्न भाव-भंगिमाओं के रस में सुविचार* राग-संगीत सहित,
और जिसमें अप्सराओं के ललित अंग नृत्य में थिरक रहे थे।९१।

सुविचार* : प्रतिबद्ध

उसके अंत में भार्या से विवाह किए हर को देवताओं ने
अञ्जलि-बद्ध दण्डवत प्रणाम किया और याचना की।
कि पञ्चसर* की सेवा स्वीकार ली जाए, शाप-अवधि
समाप्ति पर जिसने निज पूर्ण-मूर्त* प्राप्त कर ली थी।९२।

पञ्चसर* : कामदेव; मूर्त* : देह

भगवान जिसका क्रोध विगत* हो गया था, ने
उसके बाण अपने ऊपर भी चलाने हेतु दे दी अनुमति।
जो व्यापार के नियम जानते हैं, उनके द्वारा अपने स्वामी* को
कृत प्रार्थना उचित काल पर निश्चित ही सफलता है लाती।९३।

विगत* : समाप्त; स्वामी* : भर्ता

तदुपरांत इन्दुमौलि उन विबुद्धगणों* को देकर
विदाई क्षितिधरपति* पुत्री का हस्त लेकर हेतु मंगल।
कनक कलश युक्त पुष्प, आभूषण आदि से सुसज्जित
कौतुक-गृह* गया जहाँ भूमि पर बिछी हुई थी सेज एक।९४।

विबुद्धगण* : देवता; क्षितिधरपति* : हिमवान; कौतुक-गृह* : शयनागार

वहाँ ईश ने गौरी को गूढ़ रूप से हँसाया, अपने
अनुचर प्रमथों के अनूठे मुख-विकारों की नकल करके
नव-परिणय कारण लज्जा-आभूषण युक्त शालीन रही लग।
यद्यपि उसके वदन* को हर ने अपनी ओर भी खींचा था, और उसने
किञ्चित कठिनता से अपने संग सोने वाले सखियों को दिया उत्तर।९५।

वदन* : मुख